गौतम रासः परिशीलन

महोपाध्याय विनय सागर

Jain Education International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जैन वाङ्मय में, तीर्थंकर महावीर के बाद, सर्वोच्च स्थान उनके गणधर इन्द्रभूति गौतम को प्राप्त है। जैन-परम्परा ने गौतम-स्वामी को समस्त लब्धियों, सिद्धियों, विधियों के धारक, द्वादशांगी के निर्माता, अनिष्ट एवं विघ्नों के नाशक, अभीष्ट फलदायक तथा प्रातः स्मरणीय माना है।

गौतम गणधर के माहात्म्य को उजागर करने वाली मरु-गुर्जर भाषा में गुफित महोपाध्याय विनयप्रभ रचित प्राचीनतम कृति गौतम-रास को जैन समाज में यथेष्ट लोकप्रियता प्राप्त है, किन्तु इस रचना का सरल व सुरुचि-पूर्ण हिन्दी अनुवाद उपलब्ध नहीं है। म० विनय-सागर द्वारा अनुदित यह पुस्तक उस अभाव की पूर्ति करती है, साथ ही गौतम स्वामी का प्रामाणिक जीवन चरित्र भी प्रस्तुत करती है।

अनेक जैन पाठक जो दिनचर्या का आरम्भ गौतमरास के पाठ से करते हैं अब उसके सम्पूर्ण अर्थ से भी परिचित हो सकेंगे।

Jain Education International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृत भारती पुष्प–४१

गौतम रास : परिशीलन

[विनयप्रभोपाध्याय रचित गौतम रास का हिन्दी अनुवाद एवं विस्तृत परिशीलन]

महोपाध्याय विनयसागर

प्रकाशक :
प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर
श्री जैन श्वे० नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ, मेवानगर
सुरेशकुमार जैन, जमशेदपुर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

☐ प्रकाशक :

१. **देवेन्द्रराज मेहता**

सचिव, प्राकृत भारती अकादमी
३८२६, यति श्यामलालजी का उपाश्रय
मोतीसिंह भोमियों का रास्ता,
जयपुर–३०२००३ (राज०)

२. **सुल्तानमल जैन**

अध्यक्ष, श्री जैन श्वे० नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ
पो. मेवानगर, स्टेशन बालोतरा
३४४०२५, जि० बाड़मेर (राज०)

३. **सुरेशकुमार जैन**

जैन ट्रेडर्स, स्टेशन रोड़, जुगसलाई
जमशेदपुर–८३१००६ (बिहार)

☐ प्रथम संस्करण : **अक्टूबर, १९८७**

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

☐ मूल्य : **१५.०० पन्द्रह रुपये**

☐ मुद्रक :

अजन्ता प्रिण्टर्स
घी वालों का रास्ता, जौहरी बाजार,
जयपुर–३०२००३ (राज०)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

स्नेहमूर्ति मातुश्री पानीबाई

को

सादर समर्पित

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

इस अवसर्पिणी काल के चरम/चौबीसवें तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर का शासन आज भी अविच्छिन्न रूप से चल रहा है। २५ शताब्दी पूर्व दिया हुआ भगवान महावीर का अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त का त्रिवेणी रूप उपदेश आज भी विश्वशान्ति के लिये उपादेय है। उनका "जीओ और जीने दो" का शाश्वत सिद्धान्त आज भी जन-मन का हार बना हुआ है। रत्नत्रयी की सम्यक् आराधना/अनुष्ठान आज भी आत्म-शुद्धि के लिये उतना ही प्रशस्त है जितना उस समय था।

भगवान अपनी वाणी को अर्थ रूप में ही प्रकट करते हैं। उस अर्थ/वाणी को सूत्र रूप में ग्रथित करने का, प्रचार-प्रसार करने का वैशिष्ट्यपूर्ण कार्य उनके गणधर ही सम्पादित करते हैं। द्वादशांगी की रचना कर प्रभु-वाणी को अमरत्व प्रदान करते हैं। भगवान महावीर की वाणी को अमरत्व प्रदान करने का और अजस्र प्रवाहित करने/रखने का प्रशस्ततम कार्य प्रभु के प्रथम गणधर गौतम स्वामी ने ही सम्पादित किया है।

गौतम गौत्रीय इन्द्रभूति प्रसिद्ध नाम गौतम स्वामी के नाम से आज जैन समाज के आबालवृद्ध जनों के कण्ठहार बने हुए हैं। उषा काल में सभी लोग चाहे श्रमण-श्रमणी हो या उपासक-उपासिका हो, "स गौतमो यच्छतु वांछितं मे", मनो-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

वांछित फल प्राप्ति हेतु इनका नाम श्रद्धापूर्वक स्मरण करते ही हैं।

महोपाध्याय विनयप्रभ रचित **गौतम रास** गुरु गौतम के प्रशस्ततम गुणगणों का वर्णन करने वाली प्राचीन, अति प्रसिद्ध एवं सर्वजन पठन योग्य मनोहारी रचना है। इसका भक्तगण प्रतिदिन प्रातःकाल में विधि-पूर्वक पाठ करते हैं। इसकी भाषा प्राचीन गुजराती मिश्रित राजस्थानी होने से सभी लोग इसका सम्यक्तया अर्थ-चिन्तन नहीं कर पाते। इसके प्रामाणिक एवं प्रांजल हिन्दी अनुवाद की अत्यन्त आवश्यकता थी।

साथ ही आगम साहित्य और कथा साहित्य में आलेखित गौतम स्वामी के प्रामाणिक जीवन चरित की भी अत्यन्त अपेक्षा थी।

इन दोनों अपेक्षाओं की पूर्ति **महोपाध्याय विनयसागरजी** ने **"गौतम रास : परिशीलन"** नामक इस पुस्तक के माध्यम से सांगोपांग एवं विशदता के साथ सम्पादित की है।

इस पुस्तक के लेखक **महोपाध्याय विनयसागरजी** जैनागम, जैन साहित्य एवं प्राकृत भाषा के बहुश्रुत विद्वान हैं। राजस्थान सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा गत वर्ष सम्मानित भी हो चुके हैं। वर्तमान में प्राकृत भारती अकादमी के निदेशक एवं संयुक्त सचिव के दायित्व का सफलता के साथ निर्वहन भी कर रहे हैं।

हमें उनकी इस "गौतम रास : परिशीलन" पुस्तक को प्राकृत भारती के ४१वें पुष्प रूप में प्रकाशित करते हुए हार्दिक प्रसन्नता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

यह पुस्तक **प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, श्री जैन श्वेताम्बर नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ, मेवानगर** एवं **श्री सुरेश कुमारजी जैन,** जैन ट्रेडर्स, जमशेदपुर के संयुक्त प्रकाशन के रूप में प्रकट की जा रही है ।

प्रस्तुत पुस्तक के पठन-पाठन से गौतम रास के अर्थ-गाम्भीर्य को एवं गौतम स्वामी के अप्रतिम गुणों को पाठक सरलता, सरसता के साथ हृदयंगम कर सकेंगे, ऐसी हमारी अवधारणा है ।

महोपाध्याय विनयसागरजी, डॉ० हरिराम आचार्य, मुद्रक **श्री जितेन्द्र संघी** के प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं ।

सुल्तानमल जैन	**सुरेश कुमार जैन**	**देवेन्द्र राज मेहता**
अध्यक्ष	जैन ट्रेडर्स,	सचिव
जैन श्वे. नाकोड़ा पार्श्व-नाथ तीर्थ, मेवानगर ।	जमशेदपुर ।	प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीगौतमाष्टकम्

श्रीइन्द्रभूतिं वसुभूतिपुत्रं, पृथ्वीभवं गौतमगोत्ररत्नम् ।
स्तुवन्ति देवासुरमानवेन्द्राः, स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे ॥१॥

श्रीवर्द्धमानात् त्रिपदीमवाप्य, मुहूर्त्तमात्रेण कृतानि येन ।
अङ्गानि पूर्वाणि चतुर्दशापि, स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे ॥२॥

श्रीवीरनाथेन पुरा प्रणीतं, मन्त्रं महानन्दसुखाय यस्य ।
ध्यायन्त्यमी सूरिवराः समग्राः, स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे ॥३॥

यस्याभिधानं मुनयोऽपि सर्वे, गृह्णन्ति भिक्षां भ्रमणस्य काले ।
मिष्टान्नपानाम्बरपूर्णकामा , स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे ॥४॥

अष्टापदाद्रौ गगने स्वशक्त्या, ययौ जिनानां पदवन्दनाय ।
निशम्य तीर्थातिशयं सुरेभ्यः, स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे ॥५॥

त्रिपञ्चसंख्याशततापसानां, तपःकृशानामपुनर्भवाय ।
अक्षीणलब्ध्या परमान्नदाता, स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे ॥६॥

सदक्षिणं भोजनमेव देयं, साधर्मिकं संघसपर्ययेव ।
कैवल्यवस्त्रं प्रददौ मुनीनां, स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे ॥७॥

शिवं गते भर्तरि वीरनाथे, युगप्रधानत्वमिहैव मत्वा ।
पट्टाभिषेको विदधे सुरेन्द्रैः, स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे ॥८॥

श्रीगौतमस्याष्टकमादरेण,
प्रबोधकाले मुनिपुङ्गवा ये ।
पठन्ति ते सूरिपदं च देवा–
नन्दं लभन्ते नितरां क्रमेण ॥९॥

———

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

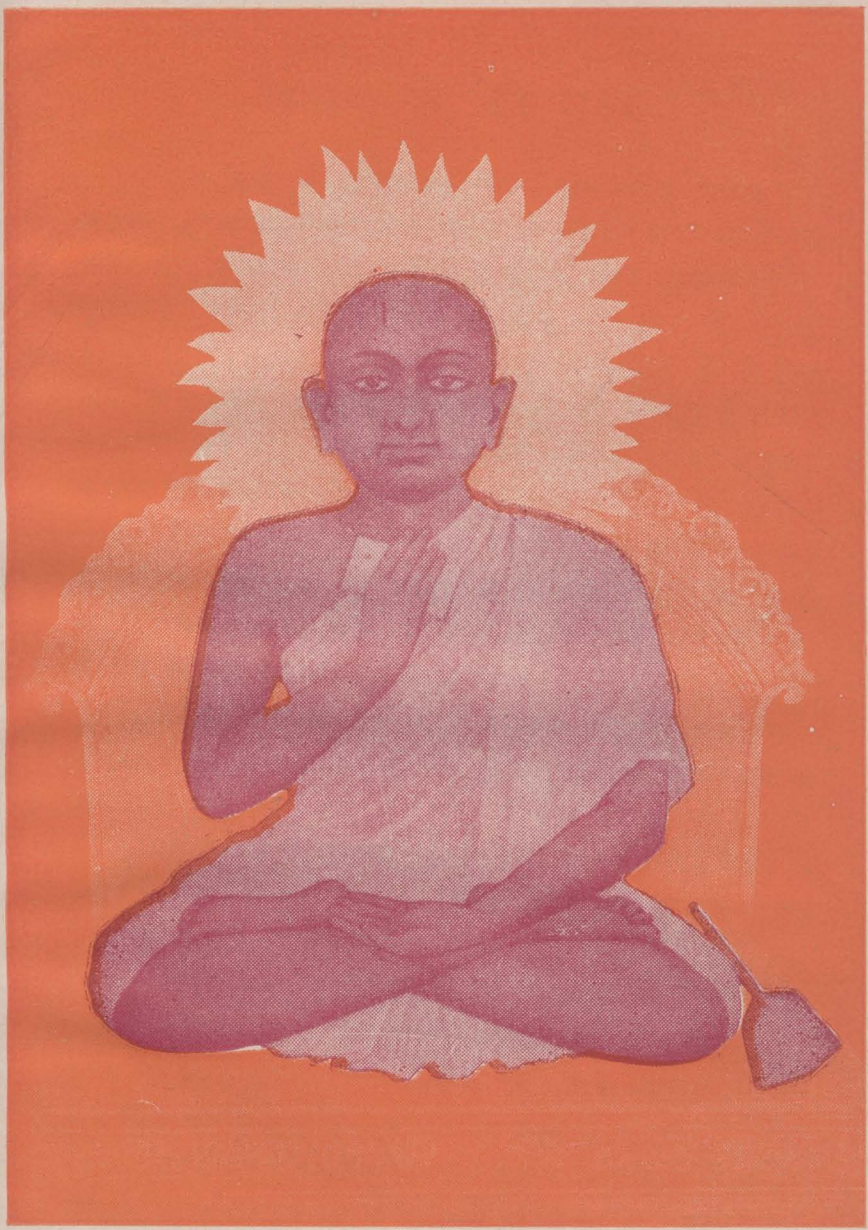

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

लेखक के दो शब्द

गत वर्ष मैं छत्तीसगढ़ रत्न शिरोमणि साध्वीवर्या **श्री मनोहरश्रीजी महाराज** के दर्शनार्थ नागोर गया था। उस समय वार्तालाप के मध्य उन्होंने सानुरोध कहा—"विनयप्रभोपाध्याय रचित गौतम रास जनमन का हार है, किन्तु, इसका हिन्दी भाषा में प्रामाणिक अनुवाद न होने से श्रद्धालु जनमानस इसके रहस्य को हृदयंगम नहीं कर पा रहा है। रास की भाषा को आप समझते हैं। अतः आप इसका अनुवाद अवश्य कर डालिये।"

मैंने उनका अनुरोध सहर्ष स्वीकार किया और प्रवास से लौटने पर कुछ ही दिनों में "गौतम रास" का हिन्दी अनुवाद कर डाला और साहित्य-महारथी श्री भँवरलालजी नाहटा से संशोधन भी करवा लिया।

गौतम रास की प्रस्तावना लिखते समय यह विचार उभरा "कि गौतम स्वामी के जीवन-चरित्र के सम्बन्ध में जैनागमों और जैन कथा-साहित्य में यत्र-तत्र जो भी उल्लेख या सामग्री प्राप्त है, उसका संकलन क्यों न कर लिया जाय।" इन्हीं विचारों ने मूर्त स्वरूप लिया और इसी के फल-स्वरूप "गौतम स्वामी : परिशीलन" लिखा गया।

लेखन करते समय मन में यह जिज्ञासा थी कि "गौतम स्वामी की अष्टापद तीर्थ-यात्रा का प्राचीन स्रोत क्या है?" अध्ययन करते हुए प्राचीन प्रमाण भी मिल गया; जिससे मनःतोष भी हो गया। प्राचीन प्रमाण है :—

सर्वमान्य आप्त व्याख्याकार जैनागम-साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् याकिनीमहत्तरासूनु **आचार्य हरिभद्रसूरि** "भवविरह"

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ने (काल ७०० से ७७०) स्वरचित "**उपदेशपद**" नामक ग्रन्थ की गाथा १४१ की स्वोपज्ञ टीका[1] में वज्रस्वामी चरित्र के अन्तर्गत गौतम स्वामी का कथानक भी दिया है। कथा प्राकृत में है और पद्य ४ से ११५ तक एवं १ से ३३ तक में ग्रथित है। इस जीवन-चरित्र की मुख्य घटनायें हैं—

गागलि प्रतिबोध, अष्टापद तीर्थ की यात्रा, चक्रवर्ती भरत कारित जिन-चैत्य-बिम्बों की स्तवना, वज्रस्वामी के जीव को प्रतिबोध और उसे सम्यक्त्व को प्राप्ति, १५०० तापसों को प्रतिबोध, महावीर का निर्वाण और गौतम को केवलज्ञान की प्राप्ति एवं निर्वाण।

इसी चरित्र/कथानक को प्रामाणिक मानकर, परवर्ती धुरन्धर आचार्यों—शीलांकाचार्य ने चउप्पन्न महापुरुष चरिय (र० सं० ९२५), अभयदेवसूरि ने भगवती सूत्र की टीका (र० सं० ११२८), देवभद्राचार्य ने महावीर चरियं (र० सं० ११३९) और कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र महाकाव्य आदि में गौतम स्वामी के जीवन-चरित्र/कथा का आलेखन किया है।

आभार—

इस पुस्तक के लेखन की प्रेरक आर्यरत्न **श्रीमनोहर श्रीजी म.** ही रही हैं अतः उनका मैं अत्यन्त ही आभारी हूँ।

पुस्तक के लेखन में मैंने जिन-जिन पुस्तकों का सहयोग लिया है, उन समस्त लेखकों का मैं ऋणी हूँ।

---

1. मुक्तिकमल जैन मोहन ज्ञान मन्दिर, बड़ौदा से प्रकाशित पत्रांक ११६ ए से १२० ए एवं १२७ बी से १२८ बी तक।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मेरे सन्मित्र **डॉ० हरिराम आचार्य**, रीडर, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर ने मेरे अनुरोध पर "गौयम गुरु रासउ : एक साहित्यिक पर्यालोचन" लिखकर मुझे अनुगृहीत किया है।

प्राकृत भारती अकादमी की प्रबन्ध समिति ने, विशेषतः अकादमी के सचिव, **श्री देवेन्द्रराजजी मेहता** ने **श्री जैन श्वेताम्बर नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ, मेवानगर** के संयुक्त प्रकाशन में इसको स्वीकार कर एवं प्रकाशित कर मुझे उपकृत किया है।

मेरे सुस्नेही मित्र **श्री सुरेश कुमार जी बैद** एवं उनकी धर्मपत्नी **बहिन शकुन्तला देवी** जमशेदपुर वालों ने १००० प्रति के अग्रिम ग्राहक बनकर इसके प्रकाशन में स्फूर्ति प्रदान की है।

आवरण सज्जा में **श्री पारस भणसाली, श्री गणेश ललवानी** कलकत्ता, मुद्रण कार्य में **श्री जितेन्द्र संघी** और प्रूफ संशोधन में श्री **सुरेन्द्र बोथरा** ने सहयोग प्रदान किया है।

मेरी धर्मपत्नी संतोष जैन, पुत्री गायत्री जैन, आयुष्मान मंजुल एवं विशाल जैन, बहिन इन्द्रबाई जैन भी इसके लेखन में प्रेरक रहे हैं। अतः उक्त सभी के प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

अन्त में, मैं अपने परम पूज्य गुरुदेव सुविहिताचार के पालक आचार्य **श्री जिनमणिसागरसूरि जी म०** का चिरऋणी एवं चिरकृतज्ञ हूँ कि जिनकी असीम कृपा एवं शुभाशीष से ही मैं कुछ लिखने योग्य बन सका हूँ, अतः सविनय नमन करता हूँ।

कार्तिक शुक्ला १, सं० २०४४. ***म. विनयसागर***

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गौतम स्वामी स्तवन

वीर जिणेसर केरो सीस, गौतम नाम जपो निस दीस ।
जे कीजे गौतम नो ध्यान, ते घर विलसे नवै निधान ॥१॥

गौतम नामे गिरिवर चढे, मन वंछित लीला संपजे ।
गौतम नामे न आवै रोग, गौतम नामे सर्व संयोग ॥२॥

जे वैरी विरूआ बंकड़ा, तस नामे नावें दूकड़ा ।
भूत प्रेत नवि मंडे प्राण, ते गौतम ना करूं वखाण ॥३॥

गौतम नामे निरमल काय, गौतम नामे वाधे आय ।
गौतम जिन-शासन सिणगार, गौतम नामे जय जयकार ॥४॥

साल दाल सदा घृत घोल, मन वंछित कापड़ तंबोल ।
घरे सुघरणी निरमल चित्त, गौतम नामे पुत्र विनीत ॥५॥

गौतम उदयो अविचल भांण, गौतम नाम जपो जग जाण ।
मोटा मंदिर मेरु समान, गौतम नामे सफल विहाण ॥६॥

घर मयगल घोड़ा नी जोड़, वारू विलसत वंछित कोड़ ।
महियल मानै मोटा राय, जो पूजो गौतम ना पाय ॥७॥

गौतम प्रणम्यां पातिक टले, उत्तम नर नी संगत मिले ।
गौतम नामे निरमल ज्ञान, गौतम नामे वाधे वान ॥८॥

पुण्यवंत अवधारो सहू, गुरु गौतम ना गुण छे बहू ।
कहे लावण्यसमय कर जोड़ि, गौतम पूज्यां संपत्ति कोडि ॥९॥

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रम

१. **गणधर गौतम : परिशीलन** १–७६

गणधर गौतम, जीवन चरित्र—जन्म, १–८
अध्ययन, आचार्य, छात्र संख्या, विवाह,
शरीर-सौष्ठव, अन्तिम यज्ञ,

महावीर का समवसरण, याज्ञिकों का भ्रम, ८–१८
भ्रम-निवारण, सर्वज्ञ-दर्शन, संदेह-निवारण,
दीक्षा, अन्य १० यज्ञाचार्यों की दीक्षा,
गणधर पद,

द्वादशांगी की रचना, गणधर पद, इन्द्रभूति १८–२७
का व्यक्तित्व, प्रश्नोत्तर,

आगमों में गौतम से सम्बन्धित अंश— २७–३८
आनन्द श्रावक, श्रमण केशीकुमार,
अतिमुक्त, उदक पेढाल पुत्र, स्कन्दक
परिव्राजक, महाशतक श्रावक

भगवान महावीर के साथ गौतम के पूर्वभव— ३८–४५
कपिल, सारथि, गौतम, खेडूत का प्रसंग

अष्टापद तीर्थ-यात्रा की पृष्ठभूमि, शंकाकुल ४५–५४
मानस, अष्टापद तीर्थ की यात्रा, वज्रस्वामी
के जीव को प्रतिबोध; तापसों की दीक्षा,
केवलज्ञान, गौतम को आश्वासन

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवान का मोक्षगमन, गौतम का विलाप, विचार-परिवर्तन और केवलज्ञान, गौतम का निर्वाण ५४–६३
गौतम स्वामी के नाम की महिमा ६४–६६
गौतम स्वामी की मूर्तियां ६६–७४
गौतम नामांकित साहित्य ७५–७६

२. **गौतमरासकार महो० विनयप्रभ** ७७–८८

३. **गोयम गुरु रासउ : एक साहित्यिक पर्यालोचन** ८९–१००

४. **गौतम रास : परिणीलन—गौतम रास सानुवाद** १०१–१३४

परिशिष्ट—सहायक पुस्तकें १३५–१३६

—०—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गणधर गौतम : परिशीलन

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गणधर गौतम

खंतिखमं गुणकलियं सव्वलद्धिसम्पन्नं ।
वीरस्स पढमं सीसं गोयमसामिं नमंसामि ।।

अब्धिर्लब्धिकदम्बकस्य तिलको निःशेषसूर्यावले–
रापीडः प्रतिबोधने गुणवतामग्रेसरो वाग्मिनाम् ।
दृष्टान्तो गुरुभक्तिशालिमनसां मौलिस्तपः श्रीजुषां,
सर्वाश्चर्यमयो महिष्ठसमयः श्रीगौतमस्तान् मुदे ।।

अंगुष्ठे चामृतं यस्य यश्च सर्वगुणोदधिः ।
भण्डारः सर्वलब्धीनां वन्दे तं गौतमप्रभुम् ।।

श्रीगौतमो गणधरः प्रकटप्रभावः,
सल्लब्धि-सिद्धिनिधिरञ्चितवाक्प्रबन्धः ।
विघ्नान्धकारहरणे तरणिप्रकाशः,
साहाय्यकृद् भवतु मे जिनवीरशिष्यः ।।

सर्वारिष्टप्रणाशाय सर्वाभीष्टार्थदायिने ।
सर्वलब्धिनिधानाय गौतमस्वामिने नमः ।।

भारतीय समाज में विघ्नोच्छेदक एवं कल्याण-मंगल-कारक के रूप में जो सर्वमान्य स्थान गणपति/गणेश का है उससे भी अधिक एवं विशिष्टतम स्थान जैन समाज तथा जैन साहित्य में गणधर गौतम स्वामी का है । जैन परम्परा में तो इन्हें विघ्नहारी मंगलकारी के अतिरिक्त क्षान्त्यादि सर्वगुण

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

परिपूर्ण, समस्त लब्धियों, सिद्धियों, निधियों के धारक और प्रदाता, सत् विद्या/द्वादशांगी के निर्माता, प्रतिबोधनपटु, चिन्तामणिरत्न एवं कल्पवृक्ष के सदृश अभीष्ट फलदाता, गणाधीश और प्रातः स्मरणीय माना गया है। गुरु-भक्ति में तो इनका नाम उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है।

न केवल जैन साहित्य में ही अपितु विश्व साहित्य में भी इस प्रकार का कोई उदाहरण प्राप्त नहीं है कि किसी गुरु ने अपने समग्र जीवन-काल में पद-पद/स्थान-स्थान पर अपने से अभिन्न शिष्य का सहस्राधिक बार नामोच्चारण कर, प्रश्नों के उत्तर या सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया हो। गणधर गौतम ही विश्व में उन अनन्यतम शिष्यों में से हैं कि जिनका चौवीसवें तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर अपने श्रीमुख से प्रतिक्षण-प्रतिपल "गोयमा ! गौतम !" का उच्चारण/उल्लेख करते रहे। समग्र जैनागम साहित्य इसका साक्षी है।

विश्व चेतना के धनी गुरु गौतम चिन्तन से, व्यवहार से, संघ नेतृत्व से पूर्णरूपेण अनेकान्त की जीवन्त मूर्ति हैं। इनकी ऋतम्भरा प्रज्ञा से, असीम स्नेह से, आत्मीयता परिपूर्ण अनुशासन से, विश्वजनीन कारुण्यवृत्ति से महावीर के संघोद्यान की कोई भी कली ऐसी नहीं है, जो अधखिली रह गई हो !

सन्त प्रवर मुनि रूपचन्द्र[1] के शब्दों में कहा जाय तो—

"प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम ! चौदह पूर्वों के अतल श्रुतसागर के पारगामी गौतम ! भगवान महावीर के कैवल्य-

---

1. २५००वां गणधर गौतम निर्वाण महोत्सव स्मारिका पृष्ठ ५।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

हिमालय से निःसृत वाणी-गंगा को धारण करने वाले भागीरथ गौतम ! विनय और समर्पण के उज्ज्वल-समुन्नत शैल-शिखर गौतम ! तीर्थंकर पार्श्वनाथ और तीर्थंकर महावीर की गंगा-यमुना-धारा के प्रयागराज गौतम ! अद्‌भुत लब्धि-चमत्कारों के क्षीर-सागर गौतम !

गौतम का व्यक्तित्व अनन्त है । जैन-शासन को गौतम का अनुदान अनन्त है । और, अनन्त है सम्पूर्ण मानव जाति को गौतम का सम्प्रदायातीत ज्योतिर्मय अवदान । गौतम के आलेख के बिना भगवान महावीर की धर्म-तीर्थ-प्रवर्तन की ज्योति-यात्रा का इतिहास अधूरा है । गौतम के उल्लेख के बिना अनन्त श्रुत-सम्पदा पर भगवान महावीर के हस्ताक्षर भी अधूरे हैं ।"

गु + अज्ञानान्धकार के, रु + नाशक = गुरु गौतम श्रमण भगवान महावीर के प्रथम शिष्य/प्रथम गणधर हैं । गण के संस्थापक तीर्थंकर होते हैं और उसके संवाहक गणधर कहलाते हैं । अथवा आचार्य मलयगिरि[1] के शब्दों में कहा जाय तो अनुत्तर ज्ञान एवं अनुत्तर दर्शन आदि धर्म समूह/गण के धारक कहलाते हैं । ऐसे यथार्थरूप में गणधर पदधारक गौतम का नाम वस्तुतः इन्द्रभूति है । इनका यह नाम भी यथा नाम तथा गुण के अनुरूप ही है; क्योंकि ये इन्द्र के समान ज्ञानादि ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं । गौतम तो इनका गोत्र है । किन्तु, जैन समाज की आबाल-वृद्ध जनता सहस्राब्दियों से इन्हें गौतम स्वामी के नाम से ही जानती-पहचानती/पुकारती आई है ।

---

1. आवश्यक सूत्र टीका

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवन-चरित्र

गौतमस्वामी का व्यक्तित्व और कृतित्व अनुपमेय है। सर्वांग रूप से इनका जीवन-चरित्र प्राप्त नहीं है, किन्तु इनके जीवन की छुट-पुट घटनाओं के उल्लेख आगम, निर्यक्ति, भाष्य, टीकाओं में बहुलता से प्राप्त होते हैं। यत्र-तत्र प्राप्त उल्लेखों/बिखरी हुई कड़ियों के आधार पर इनका जो जीवन-चरित्र बनता है, वह इस प्रकार है।

जन्म:—मगध देश के अन्तर्गत नालन्दा के अनति-दूर "गुव्वर" नाम का ग्राम था, जो समृद्धि से पूर्ण था। वहाँ विप्रवंशीय गौतम गोत्रीय वसुभूति नामक श्रेष्ठ विद्वान् निवास करते थे। उनकी अर्धांगिनी का नाम पृथ्वी था। पृथ्वी माता की रत्नकुक्षि से ही ईस्वी पूर्व ६०७ में ज्येष्ठा नक्षत्र में इनका जन्म हुआ था। इनका जन्म नाम इन्द्रभूति रखा गया था। इनके अनन्तर चार-चार वर्ष के अन्तराल में विप्र वसुभूति के दो पुत्र और हुए; जिनके नाम क्रमशः अग्निभूति और वायुभूति रखे गये थे।

अध्ययन:—यज्ञोपवीत सस्कार के पश्चात् इन्द्रभूति ने उद्भट शिक्षा-गुरु के सान्निध्य में रहकर ऋक्, यजु, साम एवं अथर्व—इन चारों वेदों; शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष इन छहों वेदांगों तथा मीमांसा, न्याय, धर्म-शास्त्र एवं पुराण—इन चार उपांगों का अर्थात् चतुर्दश विद्याओं का सम्यक् प्रकार से तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया था।

आचार्य—चौदह विद्याओं के पारंगत विद्वान होने के पश्चात् इन्द्रभूति के तीन कार्य-क्षेत्र दृष्टि-पथ में आते हैं—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

१. अध्यापन—इन्होंने ५०० छात्रों/बटुकों को समग्र विद्याओं का अध्ययन कराते हुए सुयोग्यतम वेदवित्, कर्मकाण्डी और वादी बनाये। ये ५०० छात्र शरीर-छाया के समान सर्वदा इनके साथ ही रहते थे।

२. शास्त्रार्थ—दुर्धर्ष विद्वान् होने के कारण इन्द्रभूति ने छात्र-समुदाय के साथ उत्तरी भारत में घूम-घूम कर, स्थान-स्थान पर तत्कालीन विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ किये और उन्हें पराजित कर अपनी दिग्विजय पताका फहराते रहे। किन-किन के साथ और किस-किस विषय पर शास्त्रार्थ किये? उल्लेख प्राप्त नहीं है।

३. यज्ञाचार्य—इन्द्रभूति प्रमुखतः मीमांसक होने के कारण कर्मकाण्डी थे। स्वयं प्रतिदिन यज्ञ करते और विशालतम याग-यज्ञादि क्रियाओं के अनुष्ठान करवाते थे। यज्ञाचार्य के रूप में दसों दिशाओं में इनकी प्रसिद्धि थी। फलतः अनेक वैभवशाली गृहस्थ बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान कराने के लिए इन्हें अपने यहाँ आमन्त्रित कर स्वयं को भाग्यशाली समझते थे। इन्द्रभूति की कीर्त्ति से आकृष्ट होकर अपार जन-समूह दूरस्थ प्रदेशों से इनकी यज्ञ-आहूति में पहुँच कर अपने को धन्य समझता था।

स्पष्ट है कि इनका विशाल शिष्य समुदाय था। इनके अप्रतिम वैदुष्य के समक्ष बड़े-बड़े पण्डित व शास्त्र-धुरन्धर नतमस्तक हो जाते थे। अतिनिष्णात वेद-विद्या और उच्च यज्ञाचार्य के समक्ष उस समय इन्द्रभूति की कोटि का कोई दूसरा विद्वान् मगध देश में नहीं था।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

छात्र संख्या—विशेषावश्यक भाष्य के अनुसार गौतम ५०० शिष्यों के साथ महावीर के शिष्य बने थे, निर्विवाद है। किन्तु अपने अध्यापन काल में तो उन्होंने सहस्रों छात्रों को शिक्षित कर विशिष्ट विद्वान् अवश्य बनाये होंगे ? इस सम्बन्ध में आचार्य श्री हस्तिमल जी ने "इन्द्रभूति गौतम"[1] लेख में जो विचार व्यक्त किये हैं, वे उपयुक्त प्रतीत होते हैं—

"सम्भवतः इस प्रकार ख्याति प्राप्त कर लेने के पश्चात् वे वेद-वेदांग के आचार्य बने हों। उनकी विद्वत्ता की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल जाने के कारण यह सहज ही विश्वास किया जा सकता है कि सैकड़ों की संख्या में शिक्षार्थी उनके पास अध्ययनार्थ आये हों और यह संख्या उत्तरोत्तर बढ़ते-बढ़ते ५०० ही नहीं अपितु इससे कहीं अधिक बढ़ गई हो। इन्द्रभूति के अध्यापन काल का प्रारम्भ उनकी ३० वर्ष की वय से भी माना जाय तो २० वर्ष के अध्यापन काल की सुदीर्घ अवधि में अध्येता बहुत बड़ी संख्या में स्नातक बनकर निकल चुके होंगे और उनकी जगह नवीन छात्रों का प्रवेश भी अवश्यम्भावी रहा होगा। ऐसी स्थिति में अध्येताओं की पूर्ण संख्या ५०० से अधिक होनी चाहिए। ५०० की संख्या केवल नियमित रूप से अध्ययन करने वाले छात्रों की दृष्टि से ही अधिक संगत प्रतीत होती है।"

विवाह—अध्ययनोपरान्त इन्द्रभूति का विवाह हुआ या नहीं ? कहाँ हुआ ? किसके साथ हुआ ? इनकी वंश-परम्परा चली या नहीं ? इस प्रसंग में दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परा के समस्त शास्त्रकार मौन हैं। इन्द्रभूति ५० वर्ष की अवस्था तक गृहवास में रहे, यह सभी को मान्य है, परन्तु,

---

१. २५ सौवां गणधर गौतम निर्वाण महोत्सव स्मारिका, पृ. १४

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उस अवस्था तक वे बाल ब्रह्मचारी ही रहे या गार्हस्थ्य जीवन में रहे ? कोई स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता। अतः यह मान सकते हैं कि इन्द्रभूति ने अपना ५० वर्ष का जीवन अध्ययन, अध्यापन, वाद-विवाद और कर्मकाण्ड में रहते हुए बाल-ब्रह्मचारी के रूप में ही व्यतीत किया था।

शरीर-सौष्ठव—भगवती सूत्र में इन्द्रभूति की शारीरिक रचना के प्रसंग में कहा गया है—इन्द्रभूति का देहमान ७ हाथ का था, अर्थात् शरीर की ऊँचाई सात हाथ की थी। आकार समचतुरस्र संस्थान/लक्षण (सम चौरस शरीराकृति) युक्त था। वज्रऋषभनाराच—वज्र के समान सुदृढ़ संहनन था। इनके शरीर का रंग-रूप कसौटी पर रेखांकित स्वर्ण रेखा एवं कमल की केशर के समान पद्मवर्णी/गौरवर्णी था। विशाल एवं उन्नत ललाट था और कमल-पुष्प के समान मनोहारी नयन थे। उक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इनकी शरीर-कान्ति देदीप्यमान और नयनाभिराम थी।

अन्तिम यज्ञ—उस समय अपापा नगरी में वैभव सम्पन्न एवं राज्यमान्य सोमिल नामक द्विजराज रहते थे। उन्होंने अपनी समृद्धि के अनुसार अपनी नगरी में ही विशाल यज्ञ करवाने का आयोजन किया था। सोमिल ने यज्ञ के अनुष्ठान हेतु विहार प्रदेशस्थ राजगृह, मिथिला आदि स्थानों के अनेक दिग्गज कर्मकाण्डी विद्वानों को आमन्त्रित किया था। इनमें ग्यारह उद्भट याज्ञिक प्रमुखों—इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्म, मण्डित, मौर्यपुत्र अकम्पित, अचलभ्राता, मेतार्य एवं प्रभास—को तो बड़े आग्रह के साथ आमन्त्रित किया था। उक्त ग्यारह आचार्य भी अपने विशाल छात्र/शिष्य समुदाय के

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

साथ यज्ञ सम्पन्न कराने हेतु अपापा आ गये थे। विशेषावश्यक भाष्य के अनुसार इन यज्ञाचार्यों की शिष्य संख्या निम्न थी:—

इन्द्रभूति ५००, अग्निभूति ५००, वायुभूति ५००, व्यक्त ५००, सुधर्म ५००, मंडित ३५०, मौर्यपुत्र ३५०, अकम्पित ३००, अचलभ्राता ३००, मेतार्य ३००, प्रभास ३००। इस प्रकार इन ग्यारह आचार्यों की कुल शिष्य संख्या ४४०० थी।

इन्द्रभूति के अप्रतिम वैदुष्य और प्रकृष्टतम यशोकीर्ति के कारण यज्ञानुष्ठान में मुख्य आचार्य के पद पर इनको अभिषिक्त किया गया था तथा इनके तत्त्वावधान में ही यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ था।

यज्ञ के विशालतम आयोजन तथा इन्द्रभूति आदि उक्त दुर्धर्ष आचार्यों की कीर्त्ति से आकर्षित होकर दूर-दूर प्रदेशों से अपार जनसमूह उस यज्ञ समारोह को देखने के लिए उमड़ पड़ा था।

उस समय अपापा नगरी का वह यज्ञ-स्थल एक साथ सहस्रों कण्ठों से उच्चरित वेद मन्त्रों की सुमधुर ध्वनि से गगन मंडल को गुंजायमान करने वाला हो गया था। यज्ञ वेदियों में हजारों स्रुवाओं से दी जाने वाली घृतादि की आहुतियों की सुगन्ध एवं धूम्र के घटाटोप से धरा, नभ और समस्त वातावरण एक साथ ही गुंजरित, सुगन्धित एवं मेघाच्छन्न सा हो उठा था। विशालतम यज्ञ-मण्डप में उपस्थित जन-समूह आनन्द-विभोर होकर एक अनिर्वचनीय मस्ती/आह्लाद में झूमने लगा था।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

महावीर का समवसरण

इधर क्षत्रिय कुण्ड के राजकुमार वर्धमान जिनका ईस्वी पूर्व ५९९ में जन्म हुआ था और जिन्होंने आत्म-साधना विचार से प्रेरित होकर, राज्य वैभव और गृहवास का पूर्णतः परित्याग कर ईस्वी पूर्व ५६९ में प्रव्रज्या ग्रहण करली थी। दीक्षानन्तर अनेक प्रदेशों में विचरण करते हुए, अकथनीय उपसर्गों/परीषहों का समभाव से सहन करते हुए, उत्कट तपश्चर्या द्वारा शरीर का आतापना देते हुए, पूर्वकृत कर्म-परम्परा को निर्जर/क्षय करते हुए, साढ़े बारह वर्ष के दीर्घकालीन समय तक जो संयम-साधना में रत रहे और अन्त में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, वेदनीय इन चारों घाति कर्मों का नाश कर, केवलज्ञान एवं केवलदर्शन प्राप्त कर ईस्वी पूर्व ५५७ में वैशाख शुक्ला १० को सर्वज्ञ बन गये थे।

श्रमण वर्धमान/महावीर जृम्भिका नगर के बाहर, ऋजुवालिका नदी के किनारे श्यामाक गाथापति के क्षेत्र में शालवृक्ष के नीचे, गोदोहिका आसन से उत्कट रूप में बैठे हुए ध्यानावस्था में केवलज्ञानी बने थे।

सर्वज्ञ बनते ही चतुर्विधनिकाय के देवों ने ज्ञान का महोत्सव किया और तत्क्षण ही वहाँ समवसरण की रचना की। समवसरण में विराजमान होकर प्रभु ने प्रथम देशना दी, किन्तु वह निष्फल हुई। इसीलिये यह "अच्छेरक" आश्चर्यकारक माना गया। तीर्थ-स्थापना का अभाव देखकर प्रभु ने वहाँ से रात्रि में ही विहार कर, वैशाख शुक्ला एकादशी को प्रातः समय में अपापा नगरी के महसेन नामक उद्यान

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

में पधारे। देवों ने तत्क्षण ही वहाँ विशाल, सुन्दर, मनोहारी एवं रमणीय समवसरण की एवं अष्ट प्रातिहार्यों की रचना की। महावीर समवसरण के मध्य में अशोक वृक्ष के नीचे देव-निर्मित सिंहासन पर बैठकर अपनी अमोघ दिव्यवाणी से स्वानुभूत धर्मदेशना देने लगे।

केवलज्ञान से देदीप्यमान प्रभु के दर्शन करने और उनकी अमृतोपम देशना को सुनने के लिये अपापा नगरी का का जन-समूह लालायित हो उठा और हजारों नर-नारी समवसरण में जाने के लिये उमड़ पड़े। गली-गली में एक ही स्वर घोष/कलरव गूँज उठा कि 'सर्वज्ञ के दर्शन के लिये त्वरा से चलो। जो पहले दर्शन करेगा वह भाग्यशाली होगा।" फलतः प्रातःकाल से अपार जनमेदिनी समवसरण में पहुँच कर, धर्म-देशना सुनकर अपने जीवन को सफल/कृतकृत्य समझने लगी।

देवगणों में केवलज्ञान का महोत्सव करने, सर्वज्ञ के दर्शन करने और उनकी दिव्यवाणी सुनने की होड़ा-होड़ मच गई। फलतः देवता भी अपनी देवांगनाओं के साथ स्वकीय-स्वकीय विमानों में बैठकर समवसरण की ओर वेग के साथ भागने लगे। हजारों देव-विमानों के आगमन से विशाल गगन-मण्डल भी आच्छादित हो गया।

याज्ञिकों का भ्रमः— यज्ञ मण्डप में विराजमान अध्वर्य आचार्यों और सहस्रों यज्ञ-दर्शकों की दृष्टि सहसा नभो-मण्डल की ओर उठी। आकाश में एक साथ हजारों विमानों को देख कर यज्ञ में उपस्थित लोगों की आँखें चौंधिया गईं। आँखों को मलते हुए स्पष्टतः देखा कि सहस्रों सूर्यों की तरह देदीप्यमान

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सहस्रों विमानों से नीलगगन ज्योतिर्मय हो रहा है। देव विमानों को यज्ञ-मण्डप की ओर अग्रसर होते देख उपस्थित अपार जन-समूह यज्ञ का माहात्म्य समझ कर आनन्द विभोर हो उठा।

प्रमुख यज्ञाचार्य इन्द्रभूति गौतम अत्यन्त प्रमुदित हुए और घनगम्भीर गर्वोन्नत स्वर में यजमान सोमिल को सम्बोधित कर कहने लगे—"देखो विप्रवर! यज्ञ और वेद मन्त्रों का प्रभाव देखो! सत्युग का दृश्य साकार हो गया है! अपना-अपना हविर्भाग पुरोडाश ग्रहण करने इन्द्रादि देव सशरीर तुम्हारे यज्ञ में उपस्थित हो रहे हैं। तुम्हारा मनोरथ सफल हो गया है।" और, स्वयं शतगुणित उत्साह से प्रमुदित होकर और अधिक उच्च स्वरों से वेद मंत्रोच्चारण करते हुये आहुतियां देने लगे। सहस्रों कण्ठों से एक साथ निःसृत मन्त्र-ध्वनि और स्वाहा के तुमुल घोष से आकाश गूँज उठा।

परन्तु, 'यह क्या! ये सारे देव-विमान तो यहाँ उतरने चाहिए थे, वे तो इस यज्ञ-मण्डप को लांघ कर नगर के बाहर जा रहे हैं! क्या ये देवगण मन्त्रों के आकर्षण से यहाँ नहीं आ रहे हैं! क्या यज्ञ का प्रभाव इन्हें आकृष्ट नहीं कर रहा है।' सोचते-सोचते ही न केवल इन्द्रभूति का ही अपितु सभी याज्ञिकों का गर्वस्मित मुख श्यामल हो गया। नजरें नीची हो गईं। आहूति देते हाथ स्तम्भित से हो गए। मन्त्र-ध्वनि शिथिल पड़ गई। नीची गर्दन कर इन्द्रभूति मन ही मन सोचने लगे। 'पर, ये देवगण जा किसके पास रहे हैं?' सोच ही रहे थे कि देवों का तुमुल-घोष कर्णकुहरों में पहुँचा कि—"चलो,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

शीघ्र चलो, सर्वज्ञ महावीर को वन्दन करने महसेन वन शीघ्र चलो।" इन्द्रभूति को विश्वास नहीं हुआ। अपने बटुकों/छात्रों को भेजकर जानकारी करवाई तो ज्ञात हुआ—"भगवान महावीर केवलज्ञानी/सर्वज्ञ बनकर अपापा नगरी के बाहर महसेन वन में आये हैं। देव-निर्मित अलौकिक समवसरण में बैठकर धर्मदेशना दे रहे हैं। उन्हें का नमन करने एवं उनका देशना सुनने नगर निवासी झुण्ड के झुण्ड बनाकर वहाँ पहुँच रहे हैं। समस्त देवगण भी समवसरण म सवज्ञ महावीर का अनुचरा का भाति सेवा कर रहे हैं।" सुनते ही आहत सप क। तरह गवाहत होकर इन्द्रभूति हुकार करते हुए गरजन लग। क्राधावश क कारण उनका मुख लालचाल हो गया। आंखों से मानों ज्वालाएँ निकलन लगी। हाथ-पर कापने लग। व बुदबुदा उठ—

कौन सर्वज्ञ है? कौन ज्ञानी है? विश्व में मेरे अतिरिक्त न कोई सर्वज्ञ है और न काई ज्ञानी। देश के सारे ज्ञानियों/विद्वाना का ता मैंने शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया था, कोई शेष नहीं बचा था। फिर यह नया सर्वज्ञ कहाँ से पैदा हो गया! यह महावीर नाम भी मैंने पहले कभी नहीं सुना था। अरे! हाँ, याद आया, उस बटुक ने कहा था—"ज्ञातवशीय महावीर अलौकिक शक्ति के भी धारक हैं।" हुं! तो यह क्षात्रय है! ब्राह्मणों से विद्या प्राप्त करने वाला और विप्रों के चरण-स्पश करन वाला क्षात्रिय सवज्ञ बन बैठा है! धोखा है। यह सवज्ञ नहीं, इन्द्रजाली प्रतीत होता है। इन्द्रजाल/सम्मोहिनी विद्या से इसने सब को बवकूफ बना रखा है। शेर की खाल ओढकर यह सियार अपनी माया जाल से सब को

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मूर्ख बना रहा है। मानता हू, मानव तो माया जाल में आकर मूर्ख बन सकता है, देवता नहीं। किन्तु, यहाँ तो सारे के सारे देवता भी इसके जाल में फंसकर भटक रहे हैं। चाहे कोई भी हो, मेरे अगाध वैदुष्य के समक्ष कोई टिक नहीं सकता। जैसे एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं वैसे ही इस पृथ्वीतल पर मेरी विद्यमानता में दूसरे सर्वज्ञ का अस्तित्व नहीं रह सकता। वह कैसा भी सर्वज्ञ हो, इन्द्रजाली हो, मायावी हो, मैं जाकर उसके सर्वज्ञत्व को, मायावीपन को ध्वस्त कर दूँगा, छिन्न-भिन्न कर दूँगा। मेरे सन्मुख कोई भी कैसा भी क्यों न हो, टिक नहीं सकता। तो, मैं चलूं उस तथाकथित सर्वज्ञ का मान-मर्दन करने।

भ्रम-निवारण—अभिमानाभिभूत होकर इन्द्रभूति तत्क्षण ही यज्ञवेदी से उतरे, अपनी शिखा में गांठ बांधी, अन्तरीय वस्त्र ठीक किया, खड़ाऊ पहने और मदमत्त हाथी की चाल से चल पड़े महावीर के समवसरण की ओर। अन्य दसों याज्ञिकाचार्य देखते ही रह गये। इन्द्रभूति के पीछे-पीछे उनके ५०० छात्र शिष्य भी अपने गुरु का जय-जयारव करते हुए एवं वादीगजकेसरी, वादीमानमर्दक वादीघूकभास्कर, वादीभपंचानन, सरस्वतीकण्ठाभरण आदि विरुदावली का पाठ करते हुए चल पड़े। अहंकार और ईर्ष्या मिश्रित मुख-मुद्रा धारक आचार्य को त्वरा के साथ गमन करते देखकर, नगर-वासी स्तम्भित से रह गए। कुछ कुतूहल प्रिय नागरिक मजा देखने उनके पीछे-पीछे चल पड़े।

सर्वज्ञ दर्शन—अपापा नगरी से बाहर निकल कर इन्द्रभूति ज्योंही महसेन वन की ओर बढ़े, तो देवनिर्मित

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

समवसरण की अपूर्व एवं नयनाभिराम रचना देखकर वे दिङ्-मूढ़ से हो गये। जैसे-तैसे समवसरण के प्रथम सोपान पर कदम रखा। समवसरण में स्फटिक रत्न के सिंहासन पर विराजित वीतराग महावीर के प्रशान्त मुख-मण्डल की अलौकिक एवं अनिर्वचनीय देदीप्यमान प्रभा से वे इतने प्रभावित हुए कि कुछ भी न बोल सके। वे असमंजस में पड़ गये और सोचने लगे--'क्या ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, वरुण ही तो साक्षात रूप में नहीं बैठे हैं? नहीं, शास्त्रोक्त लक्षणानुसार इनमें से यह एक भी नहीं है। फिर यह कौन है? ऐसी अनुपमेय एवं असाधारण शान्त मुख मुद्रा तो वीतराग की ही हो सकती है। तो, क्या यही सर्वज्ञ है? ऐसे ऐश्वर्य सम्पन्न सर्वज्ञ की तो मैं स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता था। वस्तुतः यदि यही सर्वज्ञ है तो मैंने यहाँ त्वरा में आकर बहुत बड़ी गलती की है। मैं तो इनके समक्ष तेजोहीन हो गया हूँ। मैं इसके साथ शास्त्रार्थ कैसे कर पाऊंगा। मैं वापस भी नहीं लौट सकता। लौट जाता हूँ तो आज तक की समुपार्जित अप्रतिम निर्मल यशोकीर्त्ति मिट्टी में मिल जाएगी। तो मैं क्या करू?' इन्द्रभूति इस प्रकार की उधेड़बुन में संलग्न थे।

उसी समय अन्तर्यामी सर्वज्ञ महावीर ने अपनी योजन-गामिनी वाणी से सम्बोधित करते हुए कहा--"भो इन्द्रभूति गौतम! तुम आ गये?" अपना नाम सुनते ही इन्द्रभूति चौंक पड़े। अरे! इन्होंने मेरा नाम कैसे जान लिया? मेरी तो इनके साथ कोई जान-पहचान भी नहीं है, कोई पूर्व परिचय भी नहीं है। अहँ प्रताड़ित होने से पुनः संकल्प-विकल्प की दोला में डोलने लगे। चाहे मैं किसी को न जानूं, पर मुझे कौन नहीं

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जानता ? सूर्य की पहचान किसे नहीं होती ? मेरे अगाध वैदुष्य की धाक सारे देश में अमिट रूप से छाई हुई है, खैर ।

सन्देह-निवारण—मेरे मन में प्रारम्भ से ही यह संशय शल्य की तरह रहा है कि 'पांच भूतों का समूह ही जीव है अथवा चेतना शक्ति सम्पन्न जीव तत्त्व कोई अन्य है ।' मैं अनेक शास्त्रों का अध्येता हूँ, फिर भी इस विषय में प्रामाणिक निर्णय पर नहीं पहुँच पाया हूँ । यदि मेरे इस संशय का ये निवारण कर दें तो मैं इन्हें सर्वज्ञ मान लूंगा और सर्वदा के लिए इनको अपना लूंगा ।

अतिशय ज्ञानी महावीर ने इन्द्रभूति के मनोगत भावों को समझकर तत्काल ही कहा—

हे गौतम ! तुम्हें यह संदेह है कि जीव है या नहीं ? यह तुम्हारा संशय वेद/बृहदारण्य उपनिषद् की श्रुति—"विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति, न च प्रेत्य संज्ञास्ति—" पर आधारित है । अर्थात् इन भूतों से विज्ञानघन समुत्थित होता है और भूतों के नष्ट हो जाने पर वह भी नष्ट हो जाता है । परलोक जैसी कोई चीज नहीं है ।

महावीर ने पुनः स्पष्ट करते हुए कहा—इस श्रुतिपद का वास्तविक अर्थ न समझने के कारण ही तुम्हें यह भ्रान्ति हुई है । इसका वस्तुतः अर्थ यह है कि आत्मा में प्रति समय नई-नई ज्ञान-पर्यायों की उत्पत्ति होती है और पूर्व की पर्यायें विलीन हो जाती हैं । जैसे घट का चिन्तन करने पर चेतना में

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

घट रूप पर्याय का आविर्भाव होता है और दूसरे क्षण पट का ध्यान करने पर घट रूप पर्याय नष्ट हो जाती है और पट रूप पर्याय उत्पन्न हो जाती है। आखिर ये ज्ञान रूप चेतन पर्यायें किसी सत्ता की ही होंगी ? यहाँ भूत शब्द का अर्थ पृथ्वी, अप्, तेजस् आदि पांच भूतों से न होकर जड़-चेतन रूप समस्त ज्ञेय पदार्थों से है। जैसे प्राण के निकल जाने पर पांच भूत तो ज्यों के त्यों बने रहते हैं। तुम ही विचार करो कि वह कौनसी सत्ता है जिसके निकल जाने से पंच भूतात्मक काया निश्चेष्ट हो जाती है तथा इन्द्रियां सामर्थ्यहीन हो जाती हैं। इन्द्रभूति ! चेतना शक्ति चित् रूप है। वह मरणधर्मा नहीं है। शरीर के नष्ट होने से चेतना नष्ट नहीं होती है। पुनः, विचारक के आधार पर ही विचार की सत्ता है। यदि विचार है तो विचारक होगा ही। अपने अस्तित्व के प्रति सन्देहशील होना यह भी एक विचार है और यह विचार कोई विचारशील सत्ता ही कर सकती है, अतः आत्मा की सत्ता तो स्वयं सिद्ध है। घट यह नहीं सोचता की मेरी सत्ता है या नहीं ? अतः तुम्हारी शंका ही आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करती है। फिर तुम्हारे वेद-श्रुतियों के प्रमाणों से भी यह स्पष्टतः सिद्ध होता है कि जीव का स्वतन्त्र अस्तित्व है।

दीक्षा—सर्वज्ञ महावीर के मुख से इस तर्क प्रधान और प्रामाणिक विवेचना को सुनकर इन्द्रभूति के मनः स्थित संशय-शल्य पूर्णतः नष्ट हो गया। अन्तर् मानस स्फटिकवत् विशुद्ध हो गया और प्रभु को वास्तविक सर्वज्ञ मानकर, नतमस्तक एवं करबद्ध होकर कहा—'स्वामिन् ! मैं इसी क्षण से आपका हो गया हूँ। अब आप मुझे पांच सौ शिष्यों के परिवार के साथ अपना शिष्य बनाकर हमारे जीवन को सफल बनावें।'

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रभु ने उसी समय ईस्वी पूर्व ५५७ में वैशाख सुदि ११ के दिन पचास वर्षीय इन्द्रभूति को अपने छात्र-परिवार के साथ प्रव्रज्या प्रदान कर अपना प्रथम शिष्य घोषित किया।

अन्य १० यज्ञाचार्यों की दीक्षा—

"इन्द्रभूति छात्र-परिवार सहित सर्वज्ञ महावीर का शिष्यत्व अंगीकार कर निर्ग्रन्थ/श्रमण बन गये हैं।" संवाद बिजली की तरह यज्ञ मण्डप में पहुंचे तो शेष दसों याज्ञिक आचार्य किंकर्त्तव्य-विमूढ़ से हो गये। सहसा उनको इस संवाद पर विश्वास ही नहीं हुआ। वे कल्पना भी नहीं कर पाते थे कि देश का इन्द्रभूति जैसा अप्रतिम दुर्धर्ष दिग्गज विद्वान् जो सर्वदा अपराजेय रहा वह किसी निर्ग्रन्थ से पराजित होकर उसका शिष्य बन सकता है। सब हतप्रभ से हो गये। किन्तु, अग्निभूति चुप न रह सका और वह आग-बबूला होकर, अपने अग्रज को बन्धन से छुड़ाने के लिए अपने छात्र-समुदाय के साथ महावीर से शास्त्रार्थ करने के लिये गर्व के साथ समवसरण की ओर चल पड़ा। महावीर के समक्ष पहुँचते ही उसने भी अपनी शंका का समाधान हृदयंगम कर छात्र-परिवार सहित उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। इस प्रकार क्रमशः वायुभूति आदि नवों कर्मकाण्डी उद्भट विद्वान् महावीर के पास पहुँचे और उनसे अपनी-अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त कर अपने छात्र-परिवार सहित प्रभु के शिष्य बन गये।*

---

* इन गणधरों की शंकाएँ और समाधान का विशेष अध्ययन करने हेतु देखें—गणधरवाद

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गणधर-पद—आवश्यक चूर्णि और महावीर चरित्र के अनुसार इन्द्रभूति आदि ग्यारह विद्वान् आचार्य प्रभु का शिष्यत्व अंगीकार करने के पश्चात् क्रमशः भगवान महावीर के समक्ष कुछ दूर पर अंजलिबद्ध नत-मस्तक होकर खड़े हो गए। उस समय कुछ क्षणों के लिये देवों ने वाद्य निनाद बन्द किये और जगद्वन्द्य महावीर ने अपने कर-कमलों से उनके शिरों पर सौगन्धिक रत्न चूर्ण डाला और इन्द्रभूति आदि सब को सम्बोधित करते हुए कहा—'मैं तुम सब को तीर्थ की अनुज्ञा देता हूँ, गणधर पद प्रदान करता हूँ।' इस प्रकार भगवान् ने अपने तीर्थ/संघ की स्थापना कर ग्यारह गणधर घोषित किये। इनमें प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम थे। ग्यारह आचार्यों का विशाल शिष्य समुदाय उन्हीं का रहा, जिनकी कुल संख्या ४४०० थी।

द्वादशांगी की रचना

शिष्यत्व अंगीकार करने के पश्चात् गणधर इन्द्रभूति श्रमण भगवान महावीर के समीप आये और सविनय वन्दना-नमस्कार के पश्चात् जिज्ञासा पूर्वक प्रश्न किया –

"भंते किं तत्त्वम् !" भगवन् ! तत्त्व क्या है ?

महावीर ने कहा –

"उप्पन्नेइ वा" उत्पाद/उत्पन्न होता है। इस उत्तर से इन्द्रभूति की जिज्ञासा शान्त नहीं हुई। वे सोचने लगे कि यदि उत्पन्न ही उत्पन्न होता रहा तो सीमित पृथिवी में उसका समावेश कैसे होगा ? अतः पुनः प्रश्न किया—

"भंते ! किं तत्त्वम्" भगवन् ! तत्त्व क्या है ?

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

महावीर ने कहा--

"विगमेइ वा" विगम/नष्ट होता है।

इन्द्रभूति का मानस पुनः संशयशील हो उठा। सोचने लगे--यदि विगम ही विगम होगा, तो एक दिन सब नष्ट हो जाएगा, संसार पूर्णतः रिक्त हो जाएगा। अतः संशय-निवारण हेतु पुनः प्रश्न किया--

"भंते ! किं तत्त्वम्।" भगवन् ! तत्त्व क्या है ?

पुनः महावीर ने उत्तर दिया—

"धुएत्ति वा" ध्रुव/शाश्वत रहता है।

यह उत्तर सुनते ही इन्द्रभूति को समाधान मिल गया, उनका संशय दूर हो गया।

इस त्रिपदी का निष्कर्ष यह है कि पर्याय दृष्टि में प्रत्येक वस्तु में उत्पाद और व्यय/नाश होता है, किन्तु द्रव्य दृष्टि से जो कुछ है वह ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है।

यह त्रिपदी प्रत्येक पदार्थ/वस्तु पर घटित होती है। विश्व में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है कि जिस पर यह घटित न हो। प्रत्येक सत् वस्तु द्रव्य रूप से सदैव नित्य है, शाश्वत है। द्रव्य यदि द्रव्य रूपता का परित्याग करदे, तो जीव जीव नहीं रह सकता और अजीव अजीव नहीं रह सकता। यदि सत् असत् रूप में परिणत हो जाए तो सारी व्यवस्था गड़बड़ा जाएगी। चेतन हो अथवा जड़, किन्तु इस सीमा रेखा का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। जैसे देखिये–एक घड़ा है, वह फूट गया। घट का रूप नष्ट हो गया, ठीकरियों के रूप

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

में उत्पत्ति हो गई, पर उसकी मिट्टी ध्रुव है। मिट्टी पहले भी थी और अब भी है। पुनः देखिये—दूध का रूप विनाश होने पर दधि रूप की उत्पत्ति है, तदपि गोरस कायम रहता है, शाश्वत रहता है।

इस त्रिपदी को हृदयंगम कर, चिन्तन-मनन पूर्वक अवगाहन कर, इन्द्रभूति ने इसी त्रिपदी को माध्यम बनाया और भगवान् ने जो-जो अर्थ प्रकट किये उन सब को सूत्र-बद्ध कर द्वादशांगी गणिपिटक की रचना की। इसीलिए शास्त्रों में गणधरों को द्वादशांगी निर्माता कहा जाता है।

गणधर-पद—जिस प्रकार प्रत्येक प्राणी तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध नहीं कर पाता, विरले व्यक्ति ही बीस स्थानक के पदों की विशिष्टतम एवं उत्कट साधना कर तीर्थंकर नाम-कर्म का उपार्जन करते हैं वैसे ही सामान्य प्राणी गणधर नाम-कर्म का बन्ध नहीं कर पाता, अपितु इने-गिने उत्कृष्टतम साधक ही बीस स्थानक पदों की उत्कट आराधना/अनुष्ठान कर गणधर नाम-कर्म का उपार्जन करते हैं। इस पद की प्राप्ति अनेक भवों से समुपार्जित महापुण्य के उदय में आने पर ही होती है। जिस प्रकार तीर्थंकर पद विशिष्ट अतिशयों का बोधक है उसी प्रकार गणधर पद भी विशिष्ट अतिशयों/लब्धि-सिद्धियों का द्योतक है। इन्द्रभूति की अनेक जन्मों की उत्कृष्ट साधना थी कि इस भव में उस प्रकृष्ट पुण्यराशि के उदय में आने के कारण दीक्षा ग्रहण करते ही तीर्थंकर महावीर के प्रथम गणधर और द्वादशांगी निर्माता बनने का अविचल सौभाग्य प्राप्त कर सके।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रभूति का व्यक्तित्व—दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् गौतम ने प्रतिज्ञा की कि यावज्जीवन मैं षष्ठ भक्त तप करूंगा, अर्थात् बिना चूक/अन्तराल के दो दिन का उपवास, एक दिन एकासन में पारणा (एक समय भोजन) और पुनः दो दिन का उपवास करता रहूंगा। और, वे अप्रमत्त होकर उत्कट संयम पथ/साधना मार्ग पर चलने लगे। वे प्रतिदिन भगवान् महावीर की एक प्रहर धर्मदेशना के पश्चात् समवसरण में सिंहासन के पाद-पीठ पर बैठ कर एक प्रहर तक देशना देते।

गौतम की विशिष्ट जीवनचर्या, दुष्कर साधना और बहुमुखी व्यक्तित्व का वर्णन भगवतीसूत्र और उपासकदशांग सूत्र में इस प्रकार प्राप्त होता है :—

श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति नामक अनगार उग्र तपस्वी थे। दीप्त तपस्वी-कर्मों को भस्मसात करने में अग्नि के समान प्रदीप्ततप करने वाले थे। तप्त तपस्वी थे अर्थात् जिनको देह पर तपश्चर्या की तीव्र झलक व्याप्त थी। जो कठोर एवं विपुल तप करने वाले थे। जो उराल—प्रबल साधना में सशक्त थे। घोरगुण—परम उत्तम—जिनको धारण करने में अद्भुत शक्ति चाहिए—ऐसे गुणों के धारक थे। प्रबल तपस्वी थे। कठोर ब्रह्मचर्य के पालक थे। दैहिक सार-सम्भाल या सजावट से रहित थे। विशाल तेजोलेश्या का अपने शरीर के भीतर समेटे हुए थे। ज्ञान की अपेक्षा से चतुर्दश पूर्वधारी और चार ज्ञान—मति, श्रुत, अवधि और मनपर्यव ज्ञान के धारक थे। सर्वाक्षर सन्निपात जैसी विविध (२८) लब्धियों के धारक थे। महान् तेजस्वी थे। वे भगवान् महावीर से न अतिदूर और न अति समीप ऊर्ध्वजानु

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

और अधो सिर होकर बैठते थे। ध्यान कोष्ठक अर्थात् सब ओर से मानसिक क्रियाओं का अवरोध कर अपने ध्यान को एक मात्र प्रभु के चरणारविन्द में केन्द्रित कर बैठते थे। बेले-बेले निरन्तर तप का अनुष्ठान करते हुए संयमाराधना तथा तन्मूलक अन्यान्य तपश्चरणों द्वारा अपनी आत्मा को भावित/संस्कारित करते हुए विचरण करते थे।

प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करते थे। दूसरे प्रहर में देशना देते थे; ध्यान करते थे। तीसरे प्रहर में पारणे के दिन अत्वरित, स्थिरता पूर्वक, अनाकुल भाव से मुखवस्त्रिका, वस्त्र-पात्र का प्रतिलेखन/प्रमार्जन कर, प्रभु की अनुमति प्राप्त कर, नगर या ग्राम में धनवान्, निर्धन और माध्यम कुलों में क्रमागत—किसी भी घर को छोड़े बिना भिक्षाचर्या के लिए जाते थे। अपेक्षित भिक्षा लेकर, स्वस्थान पर आकर, प्रभु को प्राप्त भिक्षा दिखाकर और अनुमति प्राप्त कर गोचरी/भोजन करते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन्द्रभूति अतिशय ज्ञानी होकर भी परम गुरु-भक्त और आदर्श शिष्य थे।

ज्ञाताधर्मकथा में आर्य सुधर्म के नामोल्लेख के साथ जो गणधरों के विशिष्ट गुणों का वर्णन किया गया है उनमें गणधर इन्द्रभूति का भी समावेश हो जाता है। वर्णन इस प्रकार है :—

"वे जाति सम्पन्न (उत्तम मातृपक्ष वाले) थे। कुल सम्पन्न (उत्तम पितृपक्ष वाले) थे। बलवान, रूपवान, विनयवान, ज्ञानवान, क्षायिक सम्यक्त्व सम्पन्न, साधन सम्पन्न थे। ओजस्वी थे। तेजस्वी थे। वचस्वी थ। यशस्वी

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

थ। क्रोध, मान, माया, लोभ पर विजय प्राप्त कर चुके थे। इन्द्रियों का दमन कर चुके थे। निद्रा और परीषहों को जीतने वाले थे। जीवित रहने की कामना और मृत्यु के भय से रहित थे। उत्कट तप करने वाले थे। उत्कृष्ट संयम के धारक थे। करण सत्तरी और चरण सत्तरी का पालन करने में और इन्द्रियों का निग्रह करने वालों में प्रधान थे। आर्जव, मार्दव, लाघव/कौशल, क्षमा, गुप्ति और निर्लोभता के धारक थे। विद्या–प्रज्ञप्ति आदि विद्याओं एवं मन्त्रों के धारक थे। प्रशस्त ब्रह्मचर्य के पालक थे। वेद और नय शास्त्र के निष्णात थे। भांति-भांति के अभिग्रह धारण करने में कुशल थे। उत्कृष्टतम सत्य, शौच, ज्ञान, दर्शन और चारित्र के धारक/पालक थे। घोर परीषहों को सहन करने वाले थे। घोर तपस्वी/साधक थे। उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य के पालक थे। शरीर-संस्कार के त्यागी थे। विपुल तेजोलेश्या को अपने शरीर में समाविष्ट करके रखने वाले थे। चौदह पूर्वों के ज्ञाता थे और चार ज्ञान के धारक थे।"

प्रश्नोत्तर

गौतम जब "ऊर्ध्वजानु अधः शिरः" आसन से ध्यान-कोष्ठक/ध्यान में बैठ जाते थे अर्थात् बहिर्मुखी द्वारों/विचारों को बन्द कर अन्तर् में चिन्तनशील हो जाते थे, उस समय धर्मध्यान और शुक्लध्यान की स्थिति में उनके मानस में जो भी प्रश्न उत्पन्न होते थे, जो कुछ भी जिज्ञासाएँ उभरती थीं, कौतूहल जागृत होता था, तो वे अपने स्थान से उठकर भगवान् के निकट जाते, वन्दन-नमस्कार करते और विनयावनत होकर शान्त स्वर में पूछते—भगवन् ! इनका रहस्य क्या

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

है ? इस प्रसंग का सुन्दरतम वर्णन भगवती सूत्र में प्राप्त होता है। देखिये—

"तत्पश्चात् जातश्राद्ध (प्रवृत्त हुई श्रद्धा वाले), जात संशय, जात कौतूहल, समुत्पन्न श्रद्धा वाले, समुत्पन्न संशय वाले, समुत्पन्न कुतूहल वाले गौतम अपने स्थान से उठकर खड़े होते हैं। उत्थित होकर जिस ओर श्रमण भगवान महावीर हैं उस ओर आते हैं। उनके निकट आकर प्रभु को उनकी दाहिनी ओर से प्रारम्भ करके तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं। फिर वन्दन–नमस्कार करते हैं। नमन कर वे न तो बहुत पास और न बहुत दूर भगवान् के समक्ष विनय से ललाट पर हाथ जोड़े हुए, भगवान् के वचन श्रवण करने की इच्छा से उनकी पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले।"

और, महावीर "हे गौतम !" कह कर उनकी जिज्ञासाओं–संशयों, शंकाओं का समाधान करते हैं। गौतम भी अपनी जिज्ञासा का समाधान प्राप्त कर, कृत-कत्य होकर भगवान् के चरणों में पुनः विनयपूर्वक कह उठते हैं—"सेवं भंते ! सेवं भंते ! तहमेयं भंते !" अर्थात् प्रभो ! आपने जेसा कहा है वह ठीक है, वह सत्य है। मैं उस पर श्रद्धा एवं विश्वास करता हूँ। प्रभु के उत्तर पर श्रद्धा की यह अनुगूंज वस्तुतः प्रश्नोत्तर की एक आदर्श पद्धति है।

स्वयं चार ज्ञान के धारक और अनेक विद्याओं के पारंगत होने पर भी गौतम अपनी जिज्ञासा को शान्त करने, नई-नई बातें जानने और अपनी शंकाओं का निवारण करने के लिये स्वयं के पाण्डित्य/ज्ञान का उपयोग करने के स्थान पर प्रभु महावीर से ही प्रश्न पूछते थे।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न छोटा हो या मोटा, सरल हो या कठिन, इस लोक सम्बन्धी हो या परलोक सम्बन्धी, वर्तमान-कालीन हो या भूत-भविष्यकाल से सम्बन्धित, दूसरे से सम्बन्धित हो या स्वयं से सम्बन्धित, एक-एक के सम्बन्ध में भगवान् के श्रीमुख से समाधान प्राप्त करने में ही गौतम आनन्द का अनुभव करते थे ।

वस्तुतः इन प्रश्नों के पीछे एक रहस्य भी छिपा हुआ है । ज्ञानी गौतम को प्रश्न करने या समाधान प्राप्त करने की तनिक भी आवश्यकता नहीं थी । वे तो प्रश्न इसलिये करते थे कि इस प्रकार की जिज्ञासाएँ अनेकों के मानस में होती हैं किन्तु प्रत्येक श्रोता प्रश्न पूछ भी नहीं पाता या प्रश्न करने का उसमें सामर्थ्य नहीं होता । इसीलिए गौतम अपने माध्यम से श्रोतागणों के मनःस्थित शंकाओं का समाधान करने के लिए ही प्रश्नोत्तरों की परिपाटी चलाते थे, ऐसी मेरी मान्यता है ।

विद्यमान आगमों में चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि की रचना तो गौतम के प्रश्नों पर ही आधारित है । विशालकाय पंचम अंग व्याख्या-प्रज्ञप्ति (प्रसिद्ध नाम भगवती सूत्र) जिसमें ३६००० प्रश्न संकलित हैं उनमें से कुछ प्रश्नों को छोड़कर शेष सारे प्रश्न गौतम-कृत ही हैं ।

गौतम के प्रश्न, चर्चा एवं संवादों का विवरण इतना विस्तृत है कि उसका वर्गीकरण करना भी सरल नहीं है । भगवती, औपपातिक, विपाक, राज-प्रश्नीय, प्रज्ञापना आदि में विविध विषयक इतने प्रश्न हैं कि इनके वर्गीकरण के साथ

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

विस्तृत सूची बनाई जाय तो कई भागों में कई शोध-प्रबन्ध तैयार हो सकते हैं।

सामान्यतया गौतम-कृत प्रश्नों को चार विभागों में बांट सकते हैं :—

१. अध्यात्म, २. कर्मफल, ३. लोक और ४. स्फुट।

प्रथम अध्यात्म-विभाग में इन प्रश्नों को ले सकते है:— आत्मा, स्थिति, शाश्वत-अशाश्वत, जीव, कर्म, कषाय, लेश्या, ज्ञान, ज्ञानफल, संसार, मोक्ष, सिद्ध आदि। इनमें केशी श्रमण और उदक-पेढाल के संवाद भी सम्मिलित कर सकते हैं।

दूसरे विभाग में किसी को सुखी, किसी को दुःखी, किसी को समृद्धि-सम्पन्न और किसी निपट निर्धन को देखकर उसके शुभाशुभ कर्मों को जानकारी आदि ग्रहण कर सकते हैं।

तीसरे विभाग में लोकस्थिति, परमाणु, देव, नारक, षट्काय, जीव, अजीव, भाषा, शरीर आदि और सौर मण्डल के गति विषयक आदि ले सकते हैं।

चौथे विभाग में स्फुट प्रश्नों का समावेश कर सकते हैं।

उदाहरण के तौर पर सामान्य से दो प्रश्नोत्तर प्रस्तुत हैं :—

प्रश्न—भगवन्! क्या लाघव, अल्प इच्छा, अमूर्च्छा, अनासक्ति और अप्रतिबद्धता, ये श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिये प्रशस्त हैं?

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर—हाँ, गौतम ! लाघव यावत् अप्रतिबद्धता श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये प्रशस्त/श्रेयस्कर है ।

प्रश्न—क्या कांक्षा प्रदोष क्षीण होने पर श्रमण-निर्ग्रन्थ अन्तकर अथवा चरम शरीरी होता है ? अथवा पूर्वावस्था में अधिक मोहग्रस्त होकर विहरण करे और फिर संवृत होकर मृत्यु प्राप्त करे तो तत्पश्चात् वह सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होता है, यावत् सब दुःखों का अन्त करता है ?

उत्तर—हाँ, गौतम ! कांक्षा-प्रदोष नष्ट हो जाने पर श्रमण-निर्ग्रन्थ यावत् सब दुःखों का अन्त करता है ।

(भगवती सूत्र १ शतक, ६ उद्देशक, सूत्र—१७, १६)

आगमों में गौतम से सम्बन्धित अंश

आगम-साहित्य में गणधर गौतम से सम्बन्धित प्रसंग भी बहुलता से प्राप्त होते हैं, उनमें से कतिपय संस्मरणीय प्रसंग यहाँ प्रस्तुत हैं ।

आनन्द श्रावक :

प्रभु महावीर के तीर्थ के गणाधिपति एवं सहस्राधिक शिष्यों के गुरु होते हुए भी गणधर गौतम गोचरी/भिक्षा के लिये स्वयं जाते थे । एक समय का प्रसंग है :—

प्रभु वाणिज्य ग्राम पधारे । तीसरे प्रहर में भगवान् की आज्ञा लेकर गौतम भिक्षा के लिये निकले और गवेषणा करते हुए गाथापति आनन्द श्रावक के घर पहुँचे । आनन्द श्रावक भगवान् महावीर का प्रथम श्रावक था । उपासक के बारह

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

व्रतों का पालन करते हुए ग्यारह प्रतिमाएँ भी वहन की थीं। जीवन के अन्तिम समय में उसने आजीवन अनशन ग्रहण कर रखा था। उस स्थिति में गौतम उनसे मिलने गए। आनन्द ने श्रद्धा-भक्ति पूर्वक नमन किया और पूछा—प्रभो! क्या गृहवास में रहते हुए गृहस्थ को अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है?

गौतम—हो सकता है।

आनन्द—भगवन्! मुझे भी अवधिज्ञान हुआ है। मैं पूर्व, पश्चिम, दक्षिण दिशाओं में पांच सौ-पांच सौ योजन तक लवण समुद्र का क्षेत्र, उत्तर में हिमवान पर्वत, ऊर्ध्व दिशा में सौधर्म कल्प और अधो दिशा में प्रथम नरक भूमि तक का क्षेत्र देखता हूँ।

गौतम—गृहस्थ को अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है, किन्तु इतना विशाल नहीं। तुम्हारा कथन भ्रान्तियुक्त एवं असत्य है। अतः असत्भाषण प्रवृत्ति की आलोचना/प्रायश्चित्त करो।

आनन्द—भगवन्! क्या सत्य कथन करने पर प्रायश्चित्त ग्रहण करना पड़ता है?

गौतम—नहीं।

आनन्द—तो, भगवन्! सत्य-भाषण पर आलोचना का निर्देश करने वाले आप ही प्रायश्चित्त करें।

आनन्द का उक्त कथन सुनकर गौतम असमंजस में पड़ गये। स्वयं के ज्ञान का उपयोग किये बिना ही त्वरा से प्रभु

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

के पास आये और सारा घटनाक्रम उनके सन्मुख प्रस्तुत कर पूछा—

भगवन् ! उक्त आचरण के लिये श्रमणोपासक आनन्द को आलोचना करनी चाहिए या मुझे ?

महावीर ने कहा—गौतम ! गाथापति आनन्द ने सत्य कहा है, अतः तुम ही आलोचना करो और श्रमणोपासक आनन्द से क्षमा याचना भी ।

गौतम 'तथास्तु' कह कर, लाई हुई गोचरी किये बिना ही उलटे पैरों से लौटे और आनन्द श्रावक से अपने कथन पर खेद प्रकट करते हुए क्षमा याचना की ।

—उपासकदशा अ. १ सू. ८० से ८७

इस घटना से एक तथ्य उभरता है कि गुरु गौतम कितने निश्छल, निर्मल, निर्मद, निरभिमानी थे । उन्हें तनिक भी संकोच का अनुभव नहीं हुआ कि मैं प्रभु का प्रथम गणधर होकर एक उपासक के समक्ष अपनी भूल कैसे स्वीकार करूं एवं श्रावक से कैसे क्षमा मांगू । यह उनके साधना की, निरभिमानता की कसौटी/अग्नि परीक्षा थी, जिसमें वे खरे उतरे ।

श्रमण केशीकुमार :

एक समय पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के आचार्य, अवधिज्ञान एवं श्रुतज्ञान से प्रबुद्ध केशीकुमार श्रमण सपरिवार श्रावस्ती नगरी के निकट तिंदुकवन में पधारे और इधर गणधर गौतम भी सपरिवार विचरण करते हुए श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक उद्यान में पधारे ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

दोनों आचार्यों के शिष्यवृन्द जब भिक्षाचर्या आदि के लिये गमनागमन करते थे, तब एक दूसरे के वेष, क्रियाकलाप और आचार-भिन्नता को देखते हुए उनके मन में विचार उत्पन्न हुए कि 'हम दोनों के धर्मप्रवर्तकों/तीर्थंकरों का उद्देश्य एक ही होने पर भी अन्तर क्यों है ? हमारे तीर्थंकर महावीर ने पांच महाव्रत बताए हैं जबकि इनके तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने चतुर्याम/चार महाव्रत ही। ओर, इनके और हमारे वेष में अन्तर क्यों हैं ?' दोनों महापुरुषों ने शिष्यों के शंकाकुल मानस को पढ़ा और परस्पर मिलने का विचार किया। भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा को ज्येष्ठ कुल मानकर विनय-मर्यादा के ज्ञाता गणधर गौतम शिष्यों के साथ तिन्दुक वन पधारे। गौतम गणधर को सपरिवार आता देखकर श्रमण केशीकुमार कुछ कदम सन्मुख गये और सम्यक् प्रकार से उनके अनुरूप योग्य आदर-सत्कार देकर, उन्हें साथ लेकर आए तथा अपने निकट ही बैठने के लिये आसन प्रदान किया। आसनों पर बैठे हुए दोनों महापुरुष चन्द्र-सूर्य के समान प्रभासम्पन्न दिखाई दे रहे थे। उन दोनों के मिलन को देखने, वार्तालाप सुनने हजारों लोग इकट्ठे हो गए थे। कुशल-क्षेम प्रश्न के अनन्तर दोनों का वार्तालाप प्रश्नोत्तरों के माध्यम से प्रारम्भ हुआ। केशी कुमार जिज्ञासापूर्वक प्रश्न करते और गौतम "धर्मतत्त्व की समीक्षा प्रज्ञा करती है न कि मात्र परम्परा" का आदर्श सन्मुख रखते हुए समाधान करते जाते। दोनों के मध्य निम्नांकित १२ प्रश्नोत्तर हुए :—

१. चतुर्याम धर्म और पंच महाव्रत धर्म में अन्तर का कारण।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

२. अचेलक और विशिष्ट चेलक धर्म के अन्तर का कारण ।
३. शत्रुओं पर विजय के सम्बन्ध में ।
४. पाशबन्धों को तोड़ने के सम्बन्ध में ।
५. तृष्णा रूपी लता को उखाड़ने के सम्बन्ध में ।
६. कषायाग्नि बुझाने के सम्बन्ध में ।
७. मनोनिग्रह के विषय में ।
८ कुपथ-सत्पथ के विषय में ।
९. धर्मरूपी महाद्वीप के सम्बन्ध में ।
१०. महासमुद्र को नौका से पार करने के विषय में ।
११. अन्धकाराच्छन्न लोक में प्रकाश करने वाले के सम्बन्ध में ।
१२. क्षेम-शिव और अनाबाध के विषय में ।

इन बारह प्रश्नों में प्रथम और द्वितीय प्रश्न ही मुख्यतः पार्थक्य के बोधक थे। केशी स्वामी सहृदय मानस वाले, समयज्ञ एवं मनस्वी मुनि थे। गौतम के मुख से प्रज्ञा-समीक्षण पूर्वक तर्क-संगत समाधान प्राप्त होते ही, संशय छिन्न होते ही निच्छल हृदय पूर्वक घोर पराक्रमी केशी श्रमण "हे गौतम ! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आप संशयातीत और सर्वश्रुत-महोदधि हो" कहते हुए दीक्षा-पर्याय में बड़े होते हुए भी नत-मस्तक हो जाते हैं। विनम्र भाव पूर्वक, महत्वशाली वैशिष्ट्यपूर्ण समयोचित निर्णय लेकर, अपनी परम्परा का भगवान् महावीर की परम्परा में विलीनीकरण कर देते हैं।

दोनों महापुरुषों ने परम्परा ज्येष्ठता और परम्परा श्रेष्ठता में न उलझकर, साधना को ही आत्म भूमिका पर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिष्ठित करते हुए उक्त निर्णय लिये थे। फलतः पार्श्व-परम्परा महावीर की परम्परा में समाहित हो गई। दोनों का यह मिलन वस्तुतः इतिहास की एक अभूतपूर्व एवं चिरस्मरणीय घटना है।

केशी-गौतम के प्रश्नोत्तरों का विशेष अध्ययन करने के लिये उत्तराध्यन सूत्र का तेवीसवां अध्ययन द्रष्टव्य है।

अतिमुक्त :

अन्तकृद्दशांग सूत्र के छट्ठे वर्ग के पन्द्रहवें अध्ययन में प्रसंग आता है कि पोलासपुर में विजय नामक राजा था। उसकी श्रीदेवी महारानी थी। उनके आत्मज का नाम था अतिमुक्त कुमार, जो अतीव सुकुमार था।

गुरु गौतम भगवान् की स्वीकृति लेकर छट्ठ तप के पारणे के दिन भिक्षा लेने पोलासपुर नगर में भ्रमण करने लगे।

इधर अतिमुक्त कुमार समवयस्क बच्चों के साथ सड़क पर खेल रहा था। गुरु गौतम उधर से निकले। उसने उन्हें देखा और निकट में आकर बोला—

भंते ! आप कौन हैं और क्यों घूम रहे हैं ?

गौतम ने कहा—हे देवानुप्रिय ! हम श्रमण-निर्ग्रन्थ हैं और भिक्षार्थ भ्रमण कर रहे हैं।

अतिमुक्त—"भगवन् ! आप आओ ! मैं भिक्षा दिलाता हूँ।" ऐसा कहकर अतिमुक्त ने गुरु गौतम की अंगुली पकड़ी और अंगुली पकड़े-पकड़े ही अपने घर/राजमहल में ले आया। राजा-रानी गौतम स्वामी को अपने घर पधारते देखकर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्यन्त प्रमुदित हुए और श्रद्धाभक्ति पूर्वक भिक्षा प्रदान की। बाद में वह गौतम स्वामी के साथ ही भगवान् महावीर के दर्शनार्थ समवसरण में गया। भगवान् की देशना सुनकर प्रतिबुद्ध हुआ, दीक्षा ग्रहण की और उसी भव में मोक्ष गया।

बालक का हृदय बालक के साथ बालक बनकर ही जीता जा सकता है। कुमार अतिमुक्त द्वारा अंगुली पकड़ कर चलने पर भी उसे झिड़का नहीं, बल्कि उसके साथ उसके राजमहल तक जाकर उसके हृदय को आकृष्ट कर लिया। यह घटना तेजोमय गुरु गौतम की मधुरता, स्नेहशीलता और सरलता की परिचायक है।

उदक पेढाल पुत्र :

सूत्रकृतांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध का सातवां अध्ययन नालन्दकीय नामक है। नालन्दा में ही गौतम और उदक पेढाल पुत्र की चर्चा होने से इस अध्ययन का नाम भी नालन्दकीय पड़ गया/रखा गया। यह विचार-विनिमय श्रमणोपासक लेप की उदकशाला शेषद्रव्या के निकट हस्तियाम वन खण्ड में हुआ था। उदक पेढाल भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का निर्ग्रन्थ था। एक समय गणधर गौतम उसी वन खण्ड में पधारे। उदक पेढाल पुत्र के हृदय में कुछ सन्देह थे, उनका समाधान प्राप्त करने वे गौतम के समीप आये और सविनय प्रश्न किये। मुख्यतः दो प्रश्न थे।

गौतम ने सयुक्ति एवं दृष्टान्तों द्वारा उसके दोनों प्रश्नों का समाधान एवं हितपूर्ण शिक्षा प्रदान करते हुए कहा— हे आयुष्मन्! जो मनुष्य पाप-कर्मों से मुक्त होने के लिये ज्ञान

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

दर्शन चारित्र को प्राप्त करके भी यदि कोई श्रमण-ब्राह्मण की निन्दा-विकथा करता है तो भले ही अपने मन में उन्हें अपना मित्र समझे, तदपि स्वयं का परलोक बिगाड़ता है।

गौतम की शिक्षा उसे चुभ गई और वह अविनय-पूर्वक उठकर चलने लगा। गौतम को उसका यह व्यवहार अखर गया। पुनः आवाज देकर कहा—आयुष्मन्! किसी श्रमण-माहण के मुख से एक भी धर्म वाक्य अथवा शिक्षा मिली हो तो मानना चाहिये कि इसने मुझे सत्य मार्ग समझाया है। ऐसा समझकर ऐसे उपदेशक का पूज्य बुद्धि से आदर-सत्कार करना चाहिए। यहाँ तक कि मंगलकारी देव या देव मन्दिर के समान उसकी उपासना करनी चाहिए।

गौतम के ये प्रेमपूर्ण शब्द उदक पेढाल पुत्र के अन्तर को स्पर्श कर गये और कृतज्ञता व्यक्त की तथा श्रद्धा-भक्ति पूर्वक अपना आग्रह त्याग कर भगवान् महावीर के चरणों में स्वसमर्पण कर उनकी परम्परा को स्वीकार कर लिया।

स्कन्दक परिव्राजक :

भगवती सूत्र के द्वितीय शतक के प्रथम उद्देशक सूत्र १० से ५४ तक में स्कन्दक परिव्राजक का प्रसंग प्राप्त है। तदनुसार श्रावस्ती नगरी में कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक नामक परिव्राजक रहता था। वैशालिक-श्रावक पिंगल नामक निर्ग्रन्थ ने स्कन्दक से पांच प्रश्नों का उत्तर देने के लिये कहा। प्रश्न थे :—

१. लोक सान्त है या अनन्त है?
२. जीव सान्त है या अनन्त है?

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

३. सिद्धि सान्त है या अनन्त है ?

४. सिद्ध सान्त है या अनन्त है ?

५. किस मरण से मरता हुआ जीव संसार घटाता है और किस मरण से जीव संसार बढ़ाता है ?

स्कन्दक मौन रहा। बारम्बार पूछने पर भी उत्तर न दे सका।

एकदा श्रमण भगवान् महावीर कृतंगला नगरी के छत्र-पलाशक उद्यान में पधारे। भगवान् के आगमन का संवाद सुनकर स्कन्दक ने निर्णय किया कि मैं भगवान् की सेवा में जाकर उनकी पर्युपासना करूं और पिंगल निर्ग्रन्थ द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करूं। और, वह प्रभु के समवसरण की ओर चल पड़ा।

इधर भगवान् ने गौतम से कहा—हे गौतम ! आज तू अपने पूर्व भव के साथी को देखेगा।

गौतम—भगवन् ! मैं आज किसको देखूंगा ?

भगवान—स्कन्दक तापस को देखेगा।

गौतम—मैं उसे कब, किस तरह से और कितने समय बाद देखूंगा ?

भगवान—वह संकल्प पूर्वक मेरे पास आ रहा है। अभी वह मार्ग में चल रहा है। तू आज ही उसे देखेगा।

गौतम—भगवन् ! क्या वह परिव्राजक आपके पास प्रव्रजित होने में समर्थ है ?

भगवान—हाँ, गौतम ! वह प्रव्रजित होने में सक्षम है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी वार्तालाप के मध्य स्कन्दक समवसरण के द्वार पर पहुँच गया। उसे आता देखकर, गौतम शीघ्र ही अपने आसन से उठकर सन्मुख गये और "भले पधारे" कहकर स्वागत किया तथा पूछा कि आप अपने सन्देहों का निवारण करने यहाँ पधारे हैं।

स्कन्दक आश्चर्य चकित हो गया और उसने पूछा—हे गौतम! मेरे मानसिक रहस्यों को आप कैसे जान गये?

गौतम—सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान महावीर के कथन से जान पाया हूँ।

तदनन्तर भगवान महावीर ने उक्त चारों प्रश्नों का समाधान द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के आधार से करते हुए बतलाया कि, लोक, जीव, सिद्ध शिला और सिद्ध सान्त भी हैं और अनन्त भी। पांचवें प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि बाल-मरण से जीव संसार बढ़ाता है और पण्डित मरण से संसार घटाता है।

संशयच्छिन्न होने पर स्कन्दक परिव्राजक भगवान का शिष्य बना। गुणरत्नतप और भिक्षु की १२ प्रतिमाएँ वहन कीं। अन्त में संलेखना पूर्वक शरीर त्याग कर १२वें देवलोक में गया और वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर, दीक्षा लेकर, केवली बनकर मोक्ष जाएगा।

तीर्थ के अधिपति/संचालक होते हुए भी सन्मुख जाकर एक अन्य धर्मी परिव्राजक का "भले पधारो" कहकर स्वागत करना गौतम स्वामी की सरलता, उदारता और विनम्रता का परिचायक है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ मूल में आगत "दच्छिसि णं गोयमा ! पुव्व-संगतियं" "पूर्व-संगति/पूर्वभव के साथी को देखेगा" शब्द का स्पष्टीकरण कहीं भी प्राप्त नहीं है। इस भव में गौतम स्कन्दक से परिचित नहीं थे, अतः स्पष्ट है कि पूर्व जन्मों से इनका सम्बन्ध/परिचय हो।

रतिलाल दीपचन्द देशाई ने अपनी पुस्तक "गुरु गौतम स्वामी" में वि॰ सं॰ १८८९ की लिखित प्रति के आधार से इनके पांच भवों का वर्णन किया है। तदनुसार पांच पूर्व भवों का उल्लेख इस प्रकार है[1] :—

गौतम स्वामी का जीव	स्कन्दक परिव्राजक का जीव	
१. मंगल श्रेष्ठि	सुधर्मा/सुभद्र	
२. मत्स्य	×	
३. देव ज्योतिर्माली	देव	
४. वेगवान विद्याधर (पति-पत्नी के रूप में)	धनमाला धी सखा	
५. देव	देव	देव
६. इन्द्रभूति	पिंगलक निर्ग्रन्थ	स्कन्दक परिव्राजक

महाशतक श्रावक—

उपासकदशा सूत्र के आठवें महाशतक अध्ययन के अनुसार गुरु गौतम संदेशवाहक का कार्य भी सफलता के साथ सम्पन्न करते हैं।

---

१. देखें :—गुरु गौतम स्वामी

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रमणोपासक महाशतक ने अपने अन्तिम समय में पौषधशाला में निवास कर आमरण अनशन धारण कर लिया था। इस स्थिति में उसे अवधिज्ञान भी प्राप्त हो गया था। धर्म जागरण कर रहा था।

इसी समय महाशतक को पत्नी शराब के नशे में उन्मत्त होकर पौषधशाला में आई और वासनाभिभूत होकर धर्म जागरणरत महाशतक से छेड़छाड़ करने लगी। महाशतक को क्रोध आ गया और कह बैठे—"मौत को चाहने वाली रेवती! तू सातवें दिन अशान्ति पूर्वक मर कर नरक में जाएगी।"

इसी प्रसंग में भगवान् महावीर ने कहा—हे गौतम! तुम जाओ और महाशतक से कहो—"संलेखना व्रत के साधक को ऐसा कटु सत्य कदापि नहीं कहना चाहिए। अतः कठोर भाषा बोलने का प्रायश्चित्त करे।" गौतम ने भगवान् के कथनानुसार कार्य सम्पन्न किया। यह थी भगवान् के प्रति गौतम की समर्पण भावना।

भगवान् महावीर के साथ गौतम के पूर्वभव

भगवती सूत्र के चौदहवें शतक के संश्लिष्ट नामक सातवें उद्देशक में वर्णन आता है। भगवान कहते हैं—

"हे गौतम! तू मेरे साथ चिर-संश्लिष्ट है। हे गौतम! तू मेरा चिर-संस्तुत है। तू मेरा चिर-परिचित भी है। हे गौतम! तू मेरे साथ चिरसेवित या चिर प्रीत है। हे गौतम! तू चिरकाल से मेरा अनुगामी है। हे गौतम! तू मेरे साथ

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चिरानुवृत्ति है। इस (शरीर के पूर्व) के अनन्तर देवलोक में तदनन्तर मनुष्य भव में स्नेह सम्बन्ध था। अधिक क्या कहूँ।"

भगवान् के इस कथन से स्पष्ट है कि भगवान् के साथ गौतम का अनेक जन्मों/भवों से प्रगाढ़ सम्पर्क रहा था। किन्तु, किस-किस भव में किस रूप में सम्बन्ध/साथ रहा, अस्पष्ट है, आगम-साहित्य मौन है। केवल टीकाकारों, चउप्पन्नमहापुरुष चरियं, गुणचन्द्रीय महावीर चरियं, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र आदि में वर्णित तीन भवों के उल्लेख/वर्णन प्राप्त होते हैं। वे हैं :—

१. कपिल, २. सारथि ३. गौतम

कपिल :—

सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् भगवान् महावीर के २७ भवों का वर्णन मिलता है। तीसरे भव में भगवान् का जीव प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पौत्र एवं प्रथम चक्रवर्ती भरत के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ था। नाम मरीचि था। भगवान ऋषभदेव की देशना से प्रतिबुद्ध होकर दीक्षा ग्रहण की थी। चारित्र धर्म का पालन करने में स्वयं को असमर्थ पाकर त्रिदण्डी/परिव्राजक का वेष अंगीकार कर, भगवान् के समवसरण के बाहर बैठा रहता था और जो भी आता था उसे प्रेरित कर भगवान के पास समवसरण में भेज देता था।

एक बार मरीचि बीमार पड़ा। साधु धर्म से च्युत होने के कारण किसी निर्ग्रन्थ ने उसकी सार-सम्भाल नहीं की। इससे मन में खेद हुआ और मन में निश्चय किया कि "स्वस्थ होने पर मैं भी किसी को शिष्य बनाऊँगा, जो कि वृद्धावस्था

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

में मेरी सेवा सुश्रूषा कर सकेगा।" कुछ समय बाद मरीचि स्वस्थ हो गया।

एक दिन कपिल नाम का एक कुलपुत्र उसके पास आया। उपदेश के द्वारा उसकी धर्म भावना जाग्रत की और प्रभु के पास भेजा। समवसरण का वैभव और इन्द्रादि सेवित प्रभु के अतिशयों को देखकर वह वापस लौट आया और बोला—"तेरा भगवान तो राज्य लीला भोग रहा है, वहाँ धर्म कहाँ है? क्या तेरे पास धर्म नहीं है?"

कपिल के कथन को सुनकर मरीचि ने अनुभव किया कि यह जीव प्रभु के योग्य न होकर मेरे योग्य ही है। अतः झट से कहा—"क्यों नहीं, मेरे पास भी धर्म है।" उसे सन्तुष्ट कर अपना शिष्य बनाया।

कपिल की अपने गुरु मरीचि पर अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति थी। वह दिन-रात खड़े पग रहकर उनकी सेवा करता था। मरीचि का भी अपने इस शिष्य पर अत्यन्त स्नेह था। मरीचि और कपिल का प्रेम इतना सघन था कि मानों एक शरीर की दो छायाएँ हों।

सारथि—

अठारहवें भव में भगवान का जीव त्रिपृष्ठ वासुदेव के रूप में उत्पन्न हुआ और कपिल/गौतम का जीव त्रिपृष्ठ के सारथि के रूप में।

शंखपुर प्रदेश की तुंगगिरि की गुफा में एक हिंसक सिंह रहा करता था। इस सिंह ने सैकड़ों मनुष्यों का रक्तपान

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कर आस-पास के प्रदेश में हाहाकार मचा रखा था। अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव का निर्देश प्राप्त कर त्रिपृष्ठ रथ में बैठकर, सारथि को साथ लेकर सिंह को गुफा के पास गया। सिंह को निःशस्त्र देखकर, त्रिपृष्ठ भी रथ से उतरा और शस्त्रास्त्र का त्याग कर सिंह की तरफ चला। सिंह के आक्रमण करते ही त्रिपृष्ठ ने उसके मुख में हाथ डालकर उसके मुख को जीर्ण-शीर्ण वस्त्र की तरह फाड़ डाला। सिंह पृथ्वी पर गिर पड़ा। किन्तु, उसके प्राण नहीं निकले थे, तड़फड़ा रहा था।

उस समय सारथि सिंह के पास आया और उसने शेर को सम्बोधित करते हुए स्नेहपूरित शब्दों में कहा—

हे वनराज! 'किसी काले माथे वाले पामर मनुष्य के हाथों मेरी कुमौत हो रही है। मैं इसका बाल भी बांका न कर सका। इसने मेरे बल-पराक्रम का मिट्टी में मिला दिया है।" कुछ ऐसे ही विचारों के कारण तुम्हारे प्राण नहीं निकल रहे हैं, ऐसा दिखाई दे रहा है। किन्तु, वनराज! क्या तुम जानते हो कि तुम्हारा वध करने वाला कोई सामान्य मानव नहीं है। तुम केसरी सिंह हो तो वह पुरुष सिंह—पुरुषों में सिंह के समान पराक्रमी वीर मनुष्य है। तुम्हारी मृत्यु ऐसे ही पुरुष सिंह के हाथों से हुई है। समान बल-पराक्रम वाले के हाथ से मौत हो तो यह शोक करने जैसी घटना नहीं है। तुम अपने चित्त को शान्त करो और घायल शरीर का त्याग कर परलोक की ओर प्रयाण करो। और, फिर दयाल सारथि ने भगवान के नाम का स्मरण करवाया।

सारथि की स्नेहपूर्ण मधुर वाणी सुनकर सिंह सदा के लिये शान्त हो गया।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गौतम—

सत्तावीसवें भव में मरीचि और त्रिपृष्ठ की आत्मा ही महावीर के रूप में अवतरित हुई और कपिल एवं सारथि का जीव ही इस समय में इन्द्रभूति गौतम के रूप में अवतरित हुआ।

पूर्व जन्मों की इस प्रबल स्नेह-परम्परा के कारण ही इस भव में भी गुरु-शिष्य/तीर्थंकर-गणधर के रूप में इन दोनों का पारस्परिक स्नेह भी असीमित/बेजोड़ ही रहा।

खेडूत का प्रसंग—

जिस प्रकार अनेक भवों से संचित स्नेह-परम्परा वर्धित होती हुई महावीर और गौतम के प्रशस्त एवं अटूट स्नेह के रूप में प्रतिफलित दिखाई देती है उसी प्रकार वैर-द्वेष की परम्परा भी भवों तक वर्धित होकर विनाश की कगार पर पहुँचा देती है। इसका उदाहरण है खेडूत।

भगवान महावीर किसी ग्राम की ओर पधार रहे थे। मार्ग में उन्होंने देखा कि एक खेडूत/हालिक खेत में हल चला रहा है और दुर्बल बैलों को नृशंसता के साथ पीट-पीट कर चला रहा है। यह हृदय द्रावक दृश्य देखकर एवं हालिक को सरल जीव समझ कर भगवान ने कहा—हे गौतम! जाओ और इस किसान को प्रतिबोध दो।

प्रभु की आज्ञा प्राप्त कर गौतम खेडूत के पास गये। उसे सरल और सुबोध भाषा में उपदेश दिया। उस उपदेश का खेडूत पर ऐसा जादू हुआ कि वह तत्काल ही खेती और

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

बैलों को छोड़कर गुरु गौतम का शिष्य बन गया। दीक्षानन्तर गौतम उसको साथ लेकर चले। मार्ग में उसने पूछा—हम कहाँ चल रहे हैं?

गौतम ने सहज-भाव से कहा—मेरे धर्माचार्य के पास चल रहे हैं।

कृषक—क्या आपके भी कोई गुरु हैं?

गौतम—हाँ,

कृषक—आपके गुरु कौन हैं?

गौतम—सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर मेरे गुरु/धर्माचार्य हैं।

कृषक—सोचने लगा—"मेरे गुरु बड़े ज्ञानी हैं, तो इनके गुरु तो बहुत बड़े ज्ञानी होंगे।" प्रसन्नता से गौतम के पीछे-पीछे शीघ्रता से चलने लगा। गुरु के साथ प्रभु के समीप पहुँचा। भगवान को देखते ही वह विचित्र प्रकार की बेचैनी का अनुभव करने लगा और गुरु गौतम से पूछा—सामने जो बैठ हैं ये कौन हैं?

गौतम ने कहा—ये ही तो मेरे धर्मगुरु जगदुद्धारक भगवान महावीर हैं। खेदूत आवेश में बोल उठा—"यदि यही तुम्हारे धर्मगुरु हैं तो मुझे इनसे कोई काम नहीं और न तुमसे। रखो तुम्हारा यह वेष।" कहता हुआ मुनिवेष त्याग कर उसी क्षण भाग खड़ा हुआ।

ऐसी अनहोनी और विचित्र घटना को देखकर गौतम तो स्तब्ध हो गए और भगवान से पूछ बैठे—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवन् ! मैं यह क्या देख रहा हूँ ! जहाँ भयत्रस्त एवं अशरण व्यक्ति आपके चरणों में आकर त्राण एवं शरण पाते हैं वहाँ यह आपको देखकर भयभीत होकर भाग खड़ा हुआ। प्रभो ! क्या कारण है ?

भगवान ने कहा—गौतम ! यह पूर्वबद्ध प्रीति एवं बैर का खेल है। इस किसान के जीव को तुम्हारे साथ पूर्व प्रीति है, अनुराग है, इसीलिये तुम्हें देखकर इसके मन में अनुराग पैदा हुआ और तुम्हारे उपदेश को सुनकर दीक्षित भी हुआ। मेरे प्रति अभी इसके संस्कारों में बैर-विरोध एवं भय की स्मृतियाँ शेष हैं, इसीलिये वह मुझे देखकर पूर्वजन्मों के बैर-स्मरण के कारण भयभीत होकर भाग छूटा है।

इस प्रसंग को पुनः स्पष्ट करते हुए भगवान् ने कहा—नौ भव पूर्व मैं त्रिपृष्ठ था और तुम मेरे सारथि थे। खेडूत का जीव तुंगगिरि की गुफा में सिंह था। मैंने इसे मार दिया था और तुमने उस समय उसे स्नेहपूर्ण शब्दों में आश्वस्त किया था, सान्त्वना दी थी। इसीलिये वह तुम्हारे ऊपर अनुराग रखता है और पूर्व बैर के कारण मेरे ऊपर शत्रुभाव। सिंह के इस शत्रुभाव का मुझे तो इस जन्म में दो बार सामना करना पड़ा। प्रथम तो साधना काल अर्थात् छद्मस्थावस्था के प्रथम वर्ष में गंगा नदी पार करने हेतु मैं एक नौका में बैठा था। उस समय इस सिंह का जीव देवलोक में सुदंष्ट्र नामक नाग-कुमार देव था। इसने विभंग ज्ञान से मुझे देखा। इसका पूर्व बैर जाग्रत हुआ और उस नौका को डुबाने का अथक प्रयत्न किया। खैर, वह सफल न हो सका और मैं दूसरे किनारे सकुशल पहुँच गया। किन्तु, इसकी वैराग्नि शान्त नहीं हुई।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उसी ने मरकर किसान के रूप में जन्म लिया। मुझे देखकर उसके वैराग्नि के पूर्व-संस्कार जाग उठे और मुनि-वेष छोड़कर भाग गया। गौतम ! ऐसी होती है पूर्व-बैर की प्रतिच्छाया और उसके कटुक जहरी फल। वीतराग भाव ही इस वैराग्नि का मारक है।

अष्टापद तीर्थ यात्रा की पृष्ठ-भूमि

शाल, महाशाल, गागलि—

उत्तराध्ययन सूत्र के द्रुमपत्रक नामक दशवें अध्ययन को टीका करते हुए टीकाकारों ने लिखा है :—

पृष्ठचम्पा नगरी के राजा थे शाल और युवराज थे महाशाल। दोनों भाई थे। इनकी बहन का यशस्वती, बहनोई का पिठर और भानजे का नाम गागलि था।

भगवान महावीर की देशना सुनकर दोनों भाईयों—शाल महाशाल ने दीक्षा ग्रहण करली थी और कांपिल्यपुर से अपने भानजे गागली को बुलवाकर राजपाट सौंप दिया था। राजा गागली ने अपने माता-पिता को भी पृष्ठचम्पा बुलवा लिया था।

एकदा भगवान चम्पानगरी जा रहे थे। तभी शाल और महाशाल ने स्वजनों को प्रतिबोधित करने के लिये पृष्ठचम्पा जाने की इच्छा व्यक्त की। प्रभु की आज्ञा प्राप्तकर गौतम स्वामी के नेतृत्व में श्रमण शाल और महाशाल पृष्ठचम्पा गये। वहाँ के राजा गागलि और उसके माता-पिता (यशस्वती,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पिठर) को प्रतिबोधित कर दीक्षा प्रदान की। पश्चात वे सब प्रभु की सेवा में चल पड़े। मार्ग में चलते-चलते शाल और महाशाल गौतम स्वामी के गुणों का चिन्तन और गागलि तथा उसके माता-पिता शाल एवं महाशाल मुनियों की परोपकारिता का चिन्तन करने लगे। अध्यवसायों की पवित्रता बढ़ने लगी और पांचों निर्ग्रन्थों ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। सभी भगवान के पास पहुँचे। ज्योंही शाल महाशाल और पांचों मुनिगण केवलियों की परिषद् में जाने लगे तो गौतम ने उन सबको रोकते/सम्बोधित करते हुए कहा—"पहले त्रिलोकी नाथ भगवान की वन्दना करें।"

उसी क्षण भगवान ने कहा—गौतम ! ये सब केवली हो चुके हैं, अतः इनकी आशातना मत करो।

शंकाकुल मानस—

गौतम ने उनसे क्षमायाचना की; किन्तु उनका मन अधीरता वश आकुल-व्याकुल हो उठा और सन्देहों से भर गया। वे सोचने लगे—"मेरे द्वारा दीक्षित अधिकांशतः शिष्य केवलज्ञानी हो चुके हैं, परन्तु मुझे अभी तक केवलज्ञान नहीं हुआ। क्या मैं सिद्ध पद प्राप्त नहीं कर पाऊँगा ?" "मोक्षे भवे च सर्वत्र निःस्पृहो मुनिसत्तमः" मोक्ष और संसार दोनों के प्रति पूर्णरूपेण निःस्पृह/अनासक्त रहने वाले गौतम भी "मैं चरम शरीरी (इसी देह से मोक्ष जाने वाला) हूँ या नहीं" सन्देह-दोला में झूलने लगे।

एक दिन गौतम स्वामी कहीं बाहर/अन्यत्र गये हुये थे, उस समय भगवान महावीर ने अपनी धर्मदेशना में अष्टापद

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थ की महिमा का वर्णन करते हुए कहा– 'जो साधक स्वयं की आत्मलब्धि के बल पर अष्टापद पर्वत पर जाकर चैत्यस्थ जिन-बिम्बों की वन्दना कर, एक रात्रि वहाँ निवास करे, तो वह निश्चयतः मोक्ष का अधिकारी बनता है और इसी भव में मोक्ष को प्राप्त करता है।"

बाहर से लौटने पर देवों के मुख से जब उन्होंने उक्त महावीर वाणी को सुना तो उनके चित्त को किंचित् सन्तुष्टि का अनुभव हुआ। "चरम शरीरी हूँ या नहीं" परीक्षण का मार्ग तो मिला, क्यों न परीक्षण करूं? सर्वज्ञ की वाणी शत-प्रतिशत विशुद्ध स्वर्ण होती है, इसमें शंका को स्थान ही कहाँ?"

अष्टापद तीर्थ की यात्रा—

तत्पश्चात् गौतम भगवान के पास आये और अष्टापद तीर्थ यात्रा करने की अनुमति चाही। भगवान ने भी गौतम के मन में स्थित मोक्ष-कामना जानकर और विशेष लाभ का कारण जानकर यात्रा की अनुमति प्रदान की। गौतम हर्षोत्फुल्ल होकर अष्टापद की यात्रा के लिये चले।

शीलांकाचार्य (१०वीं शताब्दी) ने चउप्पन्नमहापुरुष चरियं (पृष्ठ ३२३) के अनुसार भगवान महावीर ने १५०० तापसों को प्रतिबोध देने के लिये गौतम को अष्टापद तीर्थ की यात्रा करने का निर्देश दिया और गौतम जिन-बिम्बों के दर्शनों की उमंग लेकर चल पड़े।

गुरु गौतम आत्म-साधना से प्राप्त चारण लब्धि आदि अनेक लब्धियों के धारक थे, आकस्मिक बल एवं चारणलब्धि (आकाश में गमन करने की शक्ति) से वे वायुवेग की गति से कुछ ही क्षणों में अष्टापद की उपत्यका में पहुँच गये।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इधर कौडिन्य, दिन्न (दत्त) और शैवाल नाम के तीन तापस भी 'इसी भव में मोक्ष-प्राप्ति होगी या नहीं' का निश्चय करने हेतु अपने-अपने पांच सौ-पांच सौ तापस शिष्यों के साथ अष्टापद पर्वत पर चढ़ने के लिये क्लिष्ट तप कर रहे थे।

इनमें से कौडिन्य उपवास के अनन्तर पारणा कर फिर उपवास करता था। पारणा में मूल, कन्द आदि का आहार करता था। वह अष्टापद पर्वत पर चढ़ा अवश्य, किन्तु एक मेखला/सोपान से आगे न जा सका था।

दिन्न (दत्त) तापस दो-दो उपवास का तप करता था और पारणा में नीचे पड़े हुए पीले पत्ते खा कर रहता था। वह अष्टापद की दूसरी मेखला तक ही पहुँच पाया था।

शैवाल तापस तीन-तीन उपवास की तपस्या करता था। पारणा में सूखी शेवाल (सेवार) खा कर रहता था। वह अष्टापद की तीसरी मेखला तक ही चढ़ पाया था।

तीन सोपान (पगोथियों) से ऊपर चढ़ने की उनमें शक्ति नहीं थी। पर्वत की आठ मेखलायें थी। अन्तिम/अग्रिम मेखला तक कैसे पहुँचा जाए? इसी उधेड़बुन में वे सभी तापस चिन्तित थे।

इतने में उन तपस्वी जनों ने गौतम स्वामी को उधर आते देखा। इनकी कान्ति सूर्य के समान तेजोदीप्त थी और शरीर सप्रमाण एवं भरावदार था। मदमस्त हाथी की चाल से चलते हुए आ रहे थे। उन्हें देखकर सभी तापसगण ऊहापोह करने लगे "हम महातपस्वी और दुबले-पतले शरीर वाले भी ऊपर न जा सके, तो यह स्थूल शरीर वाला श्रमण कैसे चढ़ पाएगा?"

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

वे तपस्वी शंका-कुशंका के घेरे में पड़े हुए सोच ही रहे थे कि इतने में ही गुरु गौतम करोलिया के जाल के समान चारों तरफ फैली हुई आत्मिक-बल रूपी सूर्य किरणों का आधार लेकर जंघाचारण लब्धि से वेग के साथ क्षण मात्र में अष्टापद पर्वत की अन्तिम मेखला पर पहुँच गए। तापसों के देखते-देखते ही अदृश्य हो गए।

यह दृश्य देखकर तापसगण आश्चर्य चकित होकर विचारने लगे—"हमारी इतनी विकट तपस्या और परिश्रम भी सफल नहीं हुआ, जबकि यह महापुरुष तो खेल-खेल में ही ऊपर पहुँच गया। निश्चय ही इस महर्षि महायोगी के पास कोई महाशक्ति अवश्य होनी चाहिए।" उन्होंने निश्चय किया "ज्यों ही ये महर्षि नीचे उतरेंगे हम उनके शिष्य बन जायेंगे। इनकी शरण अंगीकार करने से हमारी मोक्ष की आकांक्षा अवश्य ही सफलीभूत होगी।"

इधर, गौतम स्वामी ने "मन के मनोरथ फलें हो" ऐसे उल्लास से अष्टापद पर्वत पर चक्रवर्ती भरत द्वारा निर्मापित एवं तोरणों से सुशोभित तथा इन्द्रादि देवताओं से पूजित-अर्चित नयनाभिराम चतुर्मुखी प्रासाद/मन्दिर में प्रवेश किया। निज-निज काय/देहमान के अनुसार चारों दिशाओं में ४,८,१०,२ की संख्या में विराजमान चौबीस तीर्थंकरों के रत्नमय बिम्बों को देखकर उनकी रोम-राजी विकसित हो गई और हर्षोत्फुल नयनों से दर्शन किये। श्रद्धा-भक्ति पूर्वक वन्दन-नमन, भावार्चन किया। मधुर एवं गम्भीर स्वरों में तीर्थंकरों की स्तवना की। दर्शन-वन्दन के पश्चात् सन्ध्या हो जाने के कारण तीर्थ-मन्दिर के निकट ही एक सघन वृक्ष के नीचे शिला पर ध्यानस्थ होकर धर्म-जागरण करने लगे।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

वज्रस्वामी के जीव को प्रतिबोध—

धर्म-जागरण करते समय अनेक देव, असुर और विद्याधर वहाँ आये, उनकी वन्दना की और गौतम के मुख से धर्म-देशना भी सुनकर कृतकृत्य हुए।

इसी समय शक्र का दिशापालक वैश्रमण देव, (शीलांकाचार्य के अनुसार गन्धर्वरति नामक विद्याधर) जिसका जीव भविष्य में दशपूर्वधर वज्र स्वामी बनेगा, तीर्थ की वन्दना करने आया। पुलकित भाव से देव-दर्शन कर गौतम स्वामी के पास आया और भक्ति पूर्वक वन्दन किया। गुरु गौतम के सुगठित, सुदृढ़, सबल एवं हृष्टपुष्ट शरीर को देखकर विचार करने लगा—"कहाँ तो शास्त्र-वर्णित कठोर तपधारी श्रमणों के दुर्बल, कृशकाय ही नहीं, अपितु अस्थि-पंजर का उल्लेख और कहाँ यह हृष्टपुष्ट एवं तेजोधारी श्रमण! ऐसा सुकुमार शरीर तो देवों का भी नहीं होता! तो, क्या यह शास्त्रोक्त मुनिधर्म का पालन करता होगा? या केवल परोपदेशक ही होगा?"

गुरु गौतम उस देव के मन में उत्पन्न भावों/विचारों को जान गए और उसकी शंका को निर्मूल करने के लिये पुण्डरीक कण्डरीक का जीवन-चरित्र (ज्ञाता धर्म कथा १९ वां अध्ययन) सुनाया और उसके माध्यम से बतलाया—महानुभाव! न तो दुर्बल, अशक्त और निस्तेज शरीर ही मुनित्व का लक्षण बन सकता है और न स्वस्थ, सुदृढ़, हृष्टपुष्ट एवं तेजस्वी शरीर मुनित्व का विरोधी बन सकता है। वास्तविक मुनित्व तो शुभध्यान द्वारा साधना करते हुए संयम यात्रा में ही समाहित/विद्यमान है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

वैश्रमण देव की शंका-निर्मूल हो गई और वह बोध पाकर श्रद्धाशील बन गया।

तापसों की दीक्षा : केवलज्ञान—

प्रातःकाल जब गौतम स्वामी पर्वत से नीचे उतरे तो सभी तापसों ने उनका रास्ता रोक कर कहा—"पूज्यवर ! आप हमारे गुरु हैं और हम सभी आपके शिष्य हैं।"

गौतम बोले—तुम्हारे और हमारे सब के गुरु तो तीर्थंकर महावीर हैं।

यह सुनकर वे सभी आश्चर्य से बोले—क्या आप जैसे सामर्थ्यवान के भी गुरु हैं ?

गौतम ने कहा—हाँ, सुरासुरों एवं मानवों के पूजनीय, राग-द्वेषरहित सर्वज्ञ महावीर स्वामी जगद्गुरु हैं, वे ही मेरे गुरु हैं।

तापसगण—भगवन् ! हमें तो इसी स्थान पर और अभी ही सर्वज्ञ-शासन की प्रव्रज्या प्रदान करने की कृपा करावें।

गौतम स्वामी ने अनुग्रह पूर्वक कौडिन्य, दिन्न और शैवाल को पन्द्रह सौ तापसों के साथ दीक्षा दी और यूथाधिपति के समान सब को साथ लेकर भगवान की सेवा में पहुँचने के लिये चल पड़े। मार्ग में भोजन का समय देखकर गौतम स्वामी ने सभी तापसों से पूछा—तपस्वोजनों ! आज आप सब लोग किस आहार से तप का पारणा करना चाहते हैं ? बतलाओ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तापसगण—भगवन् ! आप जैसे गुरु को प्राप्त कर हम सभी का अन्तःकरण परमानन्द को प्राप्त हुआ है अतः परमान्न/खीर से ही पारणा करावें ।

उसी क्षण गौतम भिक्षा के लिये गये और भिक्षा पात्र में खीर लेकर आये । सभी को पंक्ति में बिठाकर, पात्र में दाहिनी अंगूठा रखकर अक्षीणमहानसी लब्धि के प्रभाव से सभी तपस्वीजनों को पेट भर कर खीर से पारणा करवाया ।

शैवाल आदि ५०० मुनि जन तो गौतम स्वामी के अतिशय एवं लब्धियों पर विचार करते हुए ऐसे शुभध्यानारूढ़ हुए कि खीर खाते-खाते ही केवलज्ञान प्राप्त कर लिया ।

भिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् गौतम सभी श्रमणों के साथ पुनः आगे बढ़े । प्रभु के समवसरण की शोभा और अष्ट महाप्रातिहार्य देखकर दिन्न आदि ५०० अनगारों को तथा दूर से ही प्रभु के दर्शन, प्रभु की वीतराग मुद्रा देखकर कौडिन्य आदि साधुओं को शुक्लध्यान के निमित्त से केवलज्ञान प्राप्त हो गया ।

समवसरण में पहुँच कर, तीर्थंकर भगवान की प्रदक्षिणा कर सभी नवदीक्षित केवलियों की ओर बढ़ने लगे । गौतम ने उन्हें रोकते हुए कहा—भगवान को वन्दन करो । उसी समय भगवान ने कहा—गौतम ! केवलज्ञानियों की आशातना मत करो !

भगवान का वाक्य सुनते ही गौतम स्तब्ध से हो गये । भगवद् आज्ञा स्वीकार कर, गौतम ने मिथ्यादुष्कृत पूर्वक उन

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सब से क्षमा याचना की। तत्पश्चात् वे चिन्तन-दोला में हिचकोले खाने लगे। "क्या मेरी अष्टापद यात्रा निष्फल जाएगी ? क्या मैं गुरु-कर्मा हूँ ? क्या मैं इस भव में मुक्ति में नहीं जा पाऊँगा ?" यही चिन्ता उन्हें पुनः सताने लगी।

गौतम को आश्वासन—

भगवान अन्तर्यामी थे। वे गौतम के विषाद को एवं अधैर्य युक्त मन को जान गए। उनकी खिन्नता को दूर करने के लिये भगवान ने उनको सम्बोधित करते हुए कहा—

हे गौतम ! चिरकाल के परिचय के कारण तुम्हारा मेरे प्रति ऊर्णाकट (धान के छिलके के समान) जैसा स्नेह है। इसीलिये तुम्हें केवलज्ञान नहीं होता। देव, गुरु, धर्म के प्रति प्रशस्त राग होने पर भी वह यथाख्यात चारित्र का प्रतिबन्धक है। जैसे सूर्य के अभाव में दिन नहीं होता, वैसे ही यथाख्यात चारित्र के बिना केवलज्ञान नहीं होता। अतः स्पष्ट है कि जब मेरे प्रति तुम्हारा उत्कट राग/स्नेह नष्ट होगा, तब तुम्हें अवश्यमेव केवलज्ञान प्राप्त होगा।

पुनः भगवान ने कहा—"गौतम ! तुम खेद-खिन्न मत बनो, अवसाद मत करो। इस भव में मृत्यु के पश्चात्, इस शरीर से छूट जाने पर; इस मनुष्य भव से च्युत होकर, हम दोनों तुल्य (एक समान) और एकार्थ (एक ही प्रयोजन वाले अथवा एक ही लक्ष्य—सिद्धि क्षेत्र में रहने वाले) तथा विशेषता रहित एवं किसी भी प्रकार के भेदभाव से रहित हो जाएंगे।[1]"

---

१. भगवती सूत्र शतक १४, उद्देशक ७, सूत्र २

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अतः तुम अधीर मत बनो, चिन्ता मत करो। और, "जिस प्रकार शरत्कालीन कुमुद पानी से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार तू भी अपने स्नेह को विच्छिन्न (दूर) कर। तू सभी प्रकार के स्नेह का त्याग कर। हे गौतम ! समय-मात्र का भी प्रमाद मत कर।"[1]

प्रभु की उक्त अमृतरस से परिपूर्ण वाणी से गौतम पूर्णतः आश्वस्त हो गए। "मैं चरम शरीरी हूँ" इस परम सन्तुष्टि से गौतम का रोम-रोम आनन्द सरोवर में निमग्न हो गया।

भगवान् का मोक्षगमन

ईस्वी पूर्व ५१५ का वर्ष था। श्रमण भगवान् महावीर का अन्तिम चातुर्मास पावापुरी में था। चातुर्मास के साढ़े तीन माह पूर्ण होने वाले थे। भगवान् जीवन के अन्तिम समय के चिह्नों को पहचान गये। उन्हें गौतम के सिद्धि-मार्ग में बाधक अवरोध को भी दूर करना था, अतः उन्होंने गौतम को निर्देश दिया—गौतम ! निकटस्थ ग्राम में जाकर देवशर्मा को प्रति-बोधित करो।

गौतम निश्छल बालक के समान प्रभु की आज्ञा को शिरोधार्य कर देवशर्मा को प्रतिबोध देने के लिये चल पड़े।

इधर, लोकहितकारी श्रमण भगवान् महावीर ने छट्ठ तप/दो दिन का उपवास तप कर, भाषा-वर्गणा के शेष पुद्गलों को पूर्ण करने के लिये अखण्ड धारा से देशना देनी प्रारम्भ की।

---

१. उत्तराध्ययन सूत्र अ. १० गा. २८

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इस देशना में प्रभु ने पुण्य के फल, पाप के फल और अन्य अनेक उपकारी प्रश्नों का प्रतिपादन किया। बारह पर्षदा भगवान् की इस वाणी को एकाग्रचित होकर हृदय के कटोरे में भाव-भक्ति पूर्वक झेल/ग्रहण कर रही थी। भगवान् की अन्तिम धर्मपर्षदा में अनेक विशिष्ट एवं सम्मान्य व्यक्ति, काशी-कौशल देश के नौ लिच्छवी और नौ मल्लकी—अठारह राजा भी उपस्थित थे।

इस प्रकार सोलह प्रहर पर्यन्त अखण्ड देशना देते-देते कार्तिक वदि अमावस्या की मध्य रात्रि के बाद स्वाति नक्षत्र के समय वह विषम क्षण आ पहुँचा। समय का परिपाक पूर्ण हुआ और त्रिभुवन स्वामी श्रमण भगवान् महावीर बिहोत्तर वर्ष के आयुष्य का बन्धन पूर्ण कर, महानिर्वाण को प्राप्त कर, सिद्ध, बुद्ध, पारंगत, निराकार, निरंजन बन गये। भगवान् इस दिन सर्वदा के लिये मर्त्य न रहकर समस्त शुभ-शुद्ध भावना के पुंज रूप में अमर्त्य/अमर बन गए। ज्ञान सूर्य विलुप्त हो गया।

पर्षदा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त भगवान् को दीन/अनाथ भाव से अश्रुसिक्त अंजलि अर्पण कर अन्तिम नमन करती रही। पावापुरी की भूमि पवित्र हो गई। अमावस्या की रात्रि धर्मपर्व बन गई। उस रात्रि में जन समूह ने दीपक जलाकर निर्वाण कल्याणक का बहुमान किया। यही दीपक पंक्ति दीपावली त्यौहार के रूप में प्रसिद्ध हो गई।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गौतम का विलाप और केवलज्ञान-प्राप्ति

गणधर गौतम देवशर्मा को प्रतिबोध देने के बाद वापस पावापुरी की ओर आ रहे थे। प्रभु की आज्ञा पालन करने से इनका रोम-रोम उल्लास से विकसित हो रहा था। जब भी परमात्मा की आज्ञा पालन करने का एवं अबूझ जीव को प्रतिबोध देकर उद्धार करने का अवसर मिलता तो वह दिन उनके लिये आनन्दोल्लास से परिपूर्ण बन जाता था।

प्रभु के चरणों में वापस पहुँचने की प्रबल उत्कण्ठा के कारण गौतम तेजी से कदम बढ़ा रहे थे।

इधर प्रभु का निर्वाण महोत्सव मनाने एवं अन्तिम संस्कार के लिये विमानों में बैठकर देवगण ताबडतोब पावापुरी की ओर भागे जा रहे थे। आकाश में कोलाहल सा मच गया था। भागते हुए देवताओं के सहस्रों मुखों से, अवरुद्ध कण्ठों से एक ही शब्द निकल रहा था—"आज ज्ञान सूर्य अस्त हो गया है, प्रभु महावीर निर्वाण को प्राप्त हो गए हैं। अन्तिम दर्शन करने शीघ्र चलो।"

देव-मुखों से निःसृत उक्त प्रलयकारी शब्द गौतम के कानों में पहुँचे। तुमुल कोलाहल के कारण अस्पष्ट ध्वनि को समझ नहीं पाये। कान लगाकर ध्यानपूर्वक सुनने पर समझ में आया कि "प्रभु का निर्वाण हो गया है।" किन्तु, गौतम को इन शब्दों पर तनिक भी विश्वास नहीं हुआ। वे सोचने लगे—"असम्भव है, कल ही तो प्रभु ने मुझे आज्ञा देकर यहाँ भेजा था। अतः ऐसा तो कभी हो ही नहीं सकता। यह तो पागलों का प्रलाप सा प्रतीत होता है।"

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

परन्तु, परन्तु, लाखों देवता पावापुरी की ओर भागे जा रहे हैं, शब्द लहरी अवरुद्ध कण्ठों से निकल रही है, पर क्यों ?.....? और, प्रभु की वाणी थी—"देवगण असत्य नहीं बोलते" ध्यान में आते ही गौतम का रोम-रोम विचलित/कम्पित हो उठा। वे निस्तब्ध से हो गये। "निर्वाण" जैसे प्रलयकारी शब्द पर विश्वास होते ही असीम अन्तर्वेदना के कारण मुख कान्तिहीन/श्यामल हो गया, आंखों से अजस्र अश्रुधारा बहने लगी, आँखों के सामने अंधेरा छा गया, शरीर और हाथ-पैर कांपने लगे, चेतना-शक्ति विलुप्त होने लगी और वे कटे वृक्ष की भांति धड़ाम से पृथ्वी पर बैठ गये। बेसुध से, निश्चेष्ट से बैठे रहे। कुछ क्षणों के पश्चात् सोचने समझने की स्थिति में आने पर समवसरण में विराजमान प्रभु महावीर और उनके श्रीमुख से निःसृत हे गौतम ! का दृश्य चलचित्र की भांति उनकी आँखों के सामने घूमने लगा और वे सहसा निराधार, निरीह, असहाय बालक की भांति सिसकियां भरते हुए विलाप करने लगे—

"मैं कैसा भाग्यहीन हूँ, भगवान् के ग्यारह गणधरों में से नव गणधर तो मोक्ष चले गये, अन्य भी अनेक आत्माएँ सिद्ध बन गईं; स्वयं भगवान् भी मुक्तिधाम में पधार गये, और मैं प्रभु का प्रथम शिष्य होकर भी अभी तक संसार में ही रह रहा हूँ। प्रभु तो पधार गये, अब मेरा कौन है ?"

अन्तर् की गहरी वेदना उभरने लगी। दिशाएँ अन्धकारमय और बहरी बन गईं। चित्त में पुनः शून्यता व्याप्त होने लगी। तनिक से जागृत होते ही पुनः उपालम्भ के स्वरों में बोल उठे—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

"हे महावीर ! मुझ रंक पर यह असहनीय वज्रपात आपने कैसे कर डाला ? मुझे मझधार में छोड़कर कैसे चल दिये ? अब मेरा हाथ कौन पकड़ेगा ? मेरा क्या होगा ? मेरी नौका को कौन पार लगायेगा ?

हे प्रभो ! हे प्रभो !! आपने यह क्या गजब ढा दिया ? मेरे साथ कैसा अन्याय कर डाला ? विश्वास देकर विश्वास भंग क्यों किया ? अब मेरे प्रश्नों का उत्तर कौन देगा ? मेरी शंकाओं का समाधान कौन करेगा ? मैं किसे महावीर, महावीर कहूँगा ? अब मुझे हे गौतम ! कहकर प्रेम से कौन बुलाएगा ? करुणासिन्धु भगवन् मेरे किस अपराध के बदले आपने ऐसी नृशंस कठोरता बरत कर अन्त समय में मुझे दूर कर दिया ? अब मेरा कौन शरणदाता बनेगा ? वास्तव में मैं तो आज विश्व में दीन-अनाथ बन गया ?

प्रभो ! आप तो सर्वज्ञ थे न ! लोक-व्यवहार के ज्ञाता भी थे न ! ऐसे समय में तो सामान्य लोग भी स्वजन सम्बन्धियों को दूर से अपने पास बुला लेते हैं, सोख देते हैं। प्रभो ! आपने तो लोक-व्यवहार को भी तिलांजलि दे दी और मुझे दूर भगा दिया !

प्रभो ! आपको जाना था तो चले जाते, पर इस बालक को पास में तो रखते ! मैं अबोध बालक की तरह आपका अंचल/चरण पकड़ कर आपके मार्ग में बाधक नहीं बनता ! मैं आपसे केवलज्ञान की भिक्षा-याचना भी नहीं करता।

ओ महावीर ! क्या आप भूल गये ? मैं तो आपके प्रति असीम अनुराग के कारण "कैवल्य" को भी तुच्छ समझता

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

था ! फिर भी आपने स्नेह भंग कर मेरे हृदय को टूक-टूक कर डाला ! क्या यही आपकी प्रभुता थी ?"

इस प्रकार गौतम के अणु-अणु में से प्रभु के विरह की वेदना का क्रन्दन उठ रहा था। वे स्वयं को भूलकर, प्रभु के नाम पर ही निःश्वास भरते हुए अन्तर् वेदना को व्यक्त कर रहे थे।

ऐसी दयनीय एवं करुणस्थिति में भी उनके आँसुओं को पोंछने वाला, भग्न हृदय को आश्वासन देने वाला और गहन शोक के सन्ताप को दूर करने वाला इस पृथ्वीतल पर आज कोई न था। अनेक आत्माओं का आशा स्तम्भ, अनेक जीवों का उद्धारक और निपुण खिवैया भी आज विषम हताशा के गहन वात्याचक्र में फंस गया था।

विचार-परिवर्तन और केवलज्ञान—

भगवान् महावीर के प्रति गौतम का अगाध/असीम अनुराग ही उनके केवलज्ञान की प्राप्ति में बाधक बन रहा था। किन्तु, उनकी इस भूल को बतलाने वाला यहाँ न कोई तीर्थंकर था और न कोई श्रमण या श्रमणी ही इस समय उनके पास उपस्थित थे। इस समय गौतम एकाकी, केवल एकाकी थे।

वेदनानुभूति जनित विलाप और उपालम्भात्मक आक्रोश उद्गारों के द्वारा प्रकट हो जाने पर गौतम का मन कुछ शान्त/हलका हुआ। अन्तर् कुछ स्थिर और स्वस्थ हुआ। सोचने-विचारने और वस्तुस्थिति समझने की शक्ति प्रकट हुई। सोचने

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

की विचारधारा में परिवर्तन आया। अन्तर्मुखी होकर गौतम विचार करने लगे—

"अरे! चार ज्ञान और चौदह पूर्वों का धारक तथा महावीर-तीर्थ का संवाहक होकर मैं क्या करने लगा! मैं अनगार हूँ, क्या मुझे विलाप करना शोभा देता है? करुणा-सिन्धु, जगदुद्धारक प्रभु को उपालम्भ दूं; क्या मेरे लिये उचित है? अरे! जगद्वन्द्य प्रभु की कैसी अनिर्वचनीय ममता थी! अरे! प्रभु तो असीम स्नेह के सागर थे, क्या वे कभी कठोर बनकर, विश्वास भंग कर छेह दे सकते हैं? कदापि नहीं। अरे! भगवान् ने तो बारम्बार समझाया था—गौतम! प्रत्येक आत्मा स्वयं की साधना के बल पर सिद्धि प्राप्त कर सकती है। दूसरे के बल पर कोई सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता और न कोई किसी जीव की साधना के फल को रोक सकता है। मुझे अभी तक कैवल्य प्राप्त नहीं हुआ तो इसमें भगवान् का क्या दाष है! इसमें भूल या कमी तो मेरी ही होनी चाहिए।"

गौतम का अन्तर्-चिन्तन बढ़ने से प्रशस्त विचारों का प्रवाह बहने जगा। वे वीर! महावीर!! का स्मरण करते-करते प्रभु के वीतरागपन पर विचार-मन्थन करने लगे "ओ! भगवान् तो निर्मम, नीरागी और वीतराग थे। राग-द्वेष के दोष तो उनका स्पर्श भी नहीं कर पाते थे। ऐसे जगत् के हित-कारी वीतराग प्रभु क्या मेरा अहित करने के लिये अन्त समय में मुझे अपने से दूर कर सकते थे? नहीं, नहीं! प्रभु ने जो कुछ किया मेरे कल्याण के लिये ही किया होगा।"

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गौतम को स्पष्ट आभास होने लगा—"मेरी यह धारणा ही भ्रमपूर्ण थी कि प्रभु की मेरे ऊपर अपार ममता है। प्रभु के ऊपर ममता, आसक्ति, अनुराग दृष्टि तो मैं ही रखता था। मेरा यह प्रेम एकपक्षीय था। यह राग दृष्टि ही मेरे केवली बनने में बाधक बन रही थी। द्वेष-बुद्धि या राग-दृष्टि के पूर्ण अभाव में ही आत्म-सिद्धि का अमृततत्त्व प्रकट होता है, विद्यमानता में कदापि नहीं। मैं स्वयं ही अपनी सिद्धि को रोक रहा था, इसमें भगवान् का क्या दोष है ? मेरी इस राग दृष्टि को दूर करने के लिये ही प्रभु ने अन्त समय में मुझे दूर कर, प्रकाश का मार्ग दिखाकर मुझ पर अनुग्रह किया है। किन्तु, मैं अबूझ इस रहस्य को नहीं समझ सका और प्रभु को ही दोष देने लगा। हे क्षमाश्रमण भगवन् ! मेरे इस अपराध/दोष को क्षमा करें।"

पश्चात्ताप, आत्मनिरीक्षण तथा प्रशस्त शुभ अध्यवसायों की अग्नि में गौतम के मोह, माया, ममता के शेष बन्धन क्षण-मात्र में भस्मीभूत हो गये। उनकी आत्मा पूर्ण निर्मल बन गई और उनके जीवन में केवलज्ञान का दिव्य प्रकाश व्याप्त हो गया।

भगवान् महावीर का निर्वाण गौतम स्वामी के केवल-ज्ञान का निमित्त बन गया।

ईस्वी पूर्व ५२७ कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा का उषाकाल गौतम स्वामी के केवलज्ञान से प्रकाशमान हो गया। इसी दिन गौतम स्वामी सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बन गये थे।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रभु के निर्वाण से जन-समाज अथाह दुःख सागर में डूब गया था। गौतम के सर्वज्ञ बनने से उसमें अन्तर् आया। चतुर्विध संघ अत्यन्त प्रसन्न हुआ और गौतम स्वामी की जय जयकार करने लगा।

महावीर का निर्वाण और गौतम के ज्ञान का प्रसंग एकरूप बनकर पवित्र स्मरण के रूप में सर्वदा स्मरणीय बन गया।

गौतम का निर्वाण

श्रमण भगवान् महावीर देहमुक्त सिद्ध हुए और गौतम स्वामी देहधारी मुक्तात्मा केवली हुए। महावीर तीर्थ-संस्थापक तीर्थंकर थे और गौतम सामान्य जिन बने।

केवलज्ञान की दिव्यप्रभा में गौतम स्वामी ने सर्वत्र विचरण किया। अनुभूति पूर्ण धर्मदेशना के माध्यम से सहस्रों आत्माओं को प्रतिबोध देकर सिद्धि का मार्ग प्रशस्त करते रहे। महावीर-शासन को उद्योतित करते हुए तीर्थ को सुदृढ़ और सबल बनाया।

गौतम स्वामी भगवान् महावीर के १४००० साधुओं, ३६००० साध्वियों, १५९००० श्रावकों और ३१८००० श्राविकाओं के एवं स्वयं तथा अन्य गणधरों की शिष्य-परम्पराओं के एक मात्र गणाधिपति, संवाहक और सफल संचालक होते हुए भी सर्वदा निःस्पृही, निरभिमानी एवं लाघव सम्पन्न ही रहे। अन्त में, भगवान् के शासन की एवं

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वयं के शिष्य-परिवार की बागडोर अपने ही लघुभ्राता आर्य सुधर्म को सौंपदी। यही कारण है कि भगवान् के प्रथम पट्टधर शिष्य एवं प्रथम गणधर होते हुए भी महावीर की परम्परा गौतम स्वामी से प्रारम्भ न होकर सुधर्म स्वामी के नाम से आज भी अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है।

केवली होने के पश्चात् वे १२ बारह वर्ष तक महावीर वाणी को जन-जन के हृदय की गहराइयों तक पहुँचाते रहे। महावीर की यशोगाथा को गाते रहे और शासन की ध्वजा को अबाधित रूप से फहराते रहे।

गौतम स्वामी अपनी देह का विश्व के समस्त जीवों के कल्याण के लिये निरन्तर उपयोग करते रहे। बाणवें वर्ष की परिपक्व अवस्था में उन्होंने देखा कि देह-विलय का समय निकट आ गया है, तो वे राजगृह नगर के वैभारगिरि पर आये और एक मास का पादपोपगमन अनशन स्वीकार कर लिया।

अनशन के अन्त में देह-त्याग कर गौतम स्वामी ने निर्वाण प्राप्त किया। गौतम की आत्म ज्योति, भगवान् महावीर और अनन्त मुक्तात्माओं की ज्योति में सदा के लिये मिल गई। महावीर के तुल्य, एकार्थ और विशेषता रहित बनकर प्रभु की वाणी को चरितार्थ कर दिया।

इस प्रकार गौतम स्वामी ५० वर्ष गृहवास में, ३० वर्ष संयम पर्याय में और १२ वर्ष केवली पर्याय में कुल ९२ वर्ष की आयु पूर्ण कर ईस्वी पूर्व ५१५ में अक्षय सुख के भोक्ता बनकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गौतम स्वामी के नाम की महिमा

गौतम गणधर जीवन-साधना, योग-साधना और मोक्ष-साधना कर विश्व के कल्याणकारी साधक बन गए। उनकी अनुपम साधना महावीर-शासन की परम्परा के लिये अनुकरणीय एवं आदर्श बन गई। उनकी प्रशस्त साधना और गुणों को देखकर जहाँ श्रमण केशीकुमार जैसे आचार्य "संशयातीत सर्वश्रुतमहोदधि" कह कर अभिवन्दन करते हैं वहीं शास्त्रकार "क्षमाश्रमण महामुनि गौतम" एवं "सिद्ध, बुद्ध, अक्षीण महानस भगवान् गौतम" कहकर नमन करते हैं। परवर्ती आचार्यगण तो इन्हें "समग्र अरिष्ट/अनिष्टों के प्रनाशक, समस्त अभीष्ट अर्थ/मनोकामनाओं के पूरक, सकल लब्धि-सिद्धियों के भण्डार, योगीन्द्र, विघ्नहारी एवं प्रातः स्मरणीय मानकर गौतम नाम का जप करने का विधान करते हुए उल्लसित हृदय से गुणगान करते हैं।"

महिमा मंडित गौतम शब्द का अर्थ करते हुए कहते हैं :—"गौ" अर्थात् कामधेनुः "त" अर्थात् तरु/कल्पवृक्ष और "म" अर्थात् चिन्तामणि रत्न। इसी अर्थ/भावना को प्रकट करते हुए विनयप्रभोपाध्याय गौतम रास में स्पष्टतः कहते हैं :—

"चिन्तामणि कर चढीयउ आज, सुरतरु सारइ वंछिय काज,
कामकुम्भ सहु वशि हुअए।
कामगवी पूरइ मन-कामी, अष्ट महासिद्धि आवइ धामि,
सामि गोयम अनुसरउ ए ॥४२॥"

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

विनयप्रभोपाध्याय यह भी विधान करते हैं—ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं श्रीगौतमस्वामिने नमः" मन्त्र का अहर्निश जप करना चाहिए, इससे सभी मनोवांछित कार्य पूर्ण होते हैं।

गौतम के नाम की ही महिमा है कि आज भी प्रातःकाल में अहर्निश नाम-स्मरण करने से सभी कार्य सफल होते दिखाई देते हैं।

जैन समाज आज भी लक्ष्मी पूजन के पश्चात् नवीन बही-खाता में प्रथम पृष्ठ पर ही "श्रीगौतमस्वामी जी महाराज तणी लब्धि हो जो" लिखकर नाम-महिमा के साथ अपनी भावि-समृद्धि एवं सफलता की कामना उजागर करते हैं।

वास्तविकता यह है कि आज भी गौतम स्वामी का पवित्र एवं मंगल नाम जन-जन के हृदय को आह्लादित करता है। प्रतिदिन लाखों आत्माएँ आज भी प्रभात की मंगल बेला में भक्तिपूर्वक भाव-विभोर होकर नाम-स्मरण करते हुए बोलती हैं :—

अंगूठे अमृत बसे, लब्धितणा भण्डार।
श्री गुरु गौतम सुमरिये, वांछित फल दातार।

नाम-स्मरण के साथ जैन परम्परा में गौतम के नाम से कई तप भी प्रचलित हैं, जैसे—

वीर गणधर तप, २. गौतम पडधो तप
३. गौतम कमल तप, ४. निर्वाण दीपक तप

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इन तपों की आराधना कर भक्त जन गौतम के नाम का स्मरण-जप करते हुए साधना करते हैं।

ऐसे महिमा मण्डित महामानव ज्योतिपुंज क्षमाश्रमण गणधर गौतम स्वामी को कोटिशः नमन।

गौतम स्वामी की मूर्तियां

अतिशय लब्धिधारक गौतम स्वामी की पादुकाओं और मूर्तियों का निर्माण भी कई शताब्दियों पूर्व प्रारम्भ हो गया था। जैन मन्दिरों में कई प्राचीन तीर्थस्थलों पर इनकी मूर्तियाँ व पादुकायें विद्यमान हैं। वर्तमान समय में तो इनकी मूर्तियों का निर्माण प्रचुर परिमाण में हो रहा है और सैंकड़ों मन्दिरों में इनकी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित, स्थापित एवं पूजित हो रही हैं। इनकी प्राचीनतम प्रतिमा श्री भीलडियाजी तीर्थ (प्राचीन नाम भीमपल्ली) के पार्श्वनाथ मन्दिर में विद्यमान है, जो कि सं. १३३४ में सा. बोहित्थ पुत्र सा० बैजल ने अपने भाई मूलदेवादि के साथ स्वकल्याण और स्वयं के कुटुम्ब के कल्याण हेतु निर्माण करवाई थी और इसकी प्रतिष्ठा (खरतरगच्छालंकार) श्री जिनेश्वरसूरि के शिष्य श्री जिनप्रबोधसूरि जी ने की थी (जो कि प्रकटप्रभावी दादा जिनकुशलसूरिजी के दादा-गुरु थे)। प्रतिमा पर उत्कीर्ण मूल लेख इस प्रकार है—

(१) सं० १३३४ (२४ ?) वैशाख वदि ५ बुधे गौत–
(२) मस्वामिमूर्तिः श्रीजिनेश्वरसूरि-शिष्य-श्रीजि–
(३) नप्रबोधसूरिभिः प्रतिष्ठिता कारिता च सा०

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(४) बोहित्थ पुत्र सा० वइजलेन मूलदेवादि—

(५) कुटुम्बसहितेन स्वश्रेयोर्थं स्वकुटुम्बश्रेयोर्थं च ।।

—जैन तीर्थ सर्वसंग्रह भाग १, खण्ड १, पृ. ३६

किन्तु "श्री भीलड़िया पार्श्वनाथ तीर्थ" पृ. १४ एवं "यतीन्द्र विहार दिग्दर्शन" भाग १, पृ. २२५ पर सं. १३२४ दिया हुआ है, जो कि अशुद्ध एवं भ्रामक है। वस्तुतः यह १३३४ है, जिसका ऐतिहासिक प्रमाण है। श्रीजिनपालोपाध्यायादि संकलित "खतरगच्छ बृहद् गुर्वावलि में जिनप्रबोधसूरि चरित्र में पृष्ठ ५४ पर लिखा है :—

"७३. **सं० १३३४** मार्ग सुदि १३, रत्नवृष्टिगणिन्याः प्रवर्तिनीपदम्। **श्रीभीमपल्ल्यां वैशाख वदि ५,** श्रीनेमिनाथ-श्रीपार्श्वनाथबिम्बयोः, श्रीजिनदत्तसूरिमूर्तेः, श्रीशान्तिनाथदेवगृहध्वजादण्डस्य च सा० राजदेवेन, **श्रीगौतमस्वामिमूर्तेः सा० वजयलेन,** प्रतिष्ठामहोत्सवः सर्वसमुदायमेलकेन महामहोत्सवेन कारितः।"

अर्थात् सं. १३३४ मार्गसिर सुदि १३ के दिन रत्नवृष्टि गणिनी को प्रवर्तिनी पद दिया गया। तदनन्तर **भीमपल्ली नगरी में वैशाख वदि ५** के दिन सेठ राजदेव ने श्री नेमिनाथ स्वामी, श्री पार्श्वनाथ स्वामी, श्री जिनदत्तसूरि की मूर्तियों की प्रतिष्ठा तथा श्री शान्तिनाथ देव के मंदिर पर दण्डध्वजा का आरोपण किया। इसी प्रकार सब समुदायों को बुलाकर महामहोत्सव के साथ सेठ वयजल ने श्री गौतम स्वामी की मूर्ति की प्रतिष्ठा की।

—खरतरगच्छ का इतिहास प्रथम भाग पृ. १२२

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गुर्वावलि में उल्लिखित सं. १३३४ वैशाख वदि ५ को प्रतिष्ठित श्रीजिनदत्तसूरि की मूर्ति आज भी टांगड़ियावाडा, पाटण के सहस्रफणा पार्श्वनाथ मन्दिर में विद्यमान है।[1] अतः उक्त मूर्ति की प्रतिष्ठा का संवत् १३३४ ही प्रामाणिक मानना चाहिए।

गौतम स्वामी की मूर्ति के लेख में पाठान्तर भी प्राप्त है। श्रीभीलडिया पार्श्वनाथ जी तीर्थ एवं यतीन्द्र विहार दिग्दर्शन में "मूलदेवादिकुटुम्बसहितेन" के स्थान पर "मूल-देवादिभ्रातृसहितेन" मुद्रित है।

इस मूर्ति की विशिष्टता का परिचय लिखते हुये मुनिश्री विशालविजयजी ने अपनी गुजराती पुस्तक "श्री भीलडिया पार्श्वनाथ जी तीर्थ" के पृ. १३ पर लिखा है, जिसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—

"मूलनायक भगवान के सामने के जीने के पास दाहिनी ओर की दीवार की ताक में[2] श्री गौतम गणधर महाराज की मूर्ति है। दोनों पैर खड़े रखकर, दोनों हाथ जोड़कर वे पाट पर बैठे हुये हैं। यह मूर्ति जोड़े हुये हाथ वाली है अर्थात् उनके दोनों हाथों की चार-चार अंगुलियों तथा अंगूठों के बीच में मुख वस्त्रिका रखी हुई है। उनके कमर के पृष्ठ भाग में रजोहरण

---

१. मुनि जिनविजयः प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग २, लेखांक ५२४

२. जैन तीर्थ सर्व संग्रह के अनुसार मूल गर्भगृह के बाहर के रंगमंडप के दाहिनी ओर के कोणे में विराजमान है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

है। शरीर पर वस्त्रों की रेखायें भी अंकित हैं (और दाहिना स्कन्ध खुला है) तथा पीछे भामण्डल है। उनके चरणों के पास में एक श्रावक-श्राविका का युगल हाथ जोड़ कर स्तुति कर रहा हो, ऐसी बैठी हुई आकृतियाँ है।"

इसी प्रकार "खरतरगच्छ बृहद् गुर्वावलि" पृ. ९४ के अनुसार श्री जिनेश्वरसूरि ने सं. १२८० माघ सुदि १२ श्रीमाल में तथा पृष्ठ ५६ के अनुसार श्री जिनप्रबोधसूरि ने सं. १३३५ वैशाख वदि ६ के दिन वरडिया में श्री गौतम स्वामी की मूर्ति की प्रतिष्ठायें की थीं; किन्तु आज ये दोनों प्राचीन मूर्तियाँ किस स्थान पर प्राप्त हैं, अन्वेषणीय है।

गौतम स्वामी की अभिलेखों एवं संवतोल्लेख वाली प्रतिमायें या चरण-पादुकायें कहाँ-कहाँ और किन मन्दिरों में आज भी विद्यमान हैं, पूजित हैं? इसकी विस्तृत जानकारी हमें अद्यावधि प्रकाशित मूर्ति अभिलेखों से सम्बन्धित पुस्तकों से प्राप्त होती है। आनुषंगिक एवं उपयोगी होने से प्रत्येक पुस्तक के लेखांकों के आधार पर तालिका प्रस्तुत की जा रही है।

पं. कंचन सागर : शत्रुंजय गिरिराज दर्शन

लेखांक	स्थान	संवत्	मूर्ति या चरण
१५५	शत्रुंजय, देरी नं. १९६	१७९४	मू.
३४९	,, देरी नं. ६३०/२/८	१५२७	मू.

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

बुद्धि सागर सूरि : जैन धातु प्रतिमा लेख संग्रह भाग १

६	डभोई, सामला पार्श्व मं.	१७४५	मू.
४८६	करबटीया पेपरदर, अभिनन्दन मन्दिर	१६१६	मू.
१२४७	अहमदाबाद शान्तिनाथ मं.	१५१६	मू.

जैन धातु प्रतिमा लेख संग्रह भाग २

८६६	खंभात, भोंयरा पाडो शान्तिनाथ मन्दिर	१५५३	मू.
१०८०	खंभात, नागर वाडो वासुपूज्य मन्दिर	१५४७	मू.

कान्ति सागर : जैन धातु प्रतिमा लेख

२३७	कलकत्ता, तुलापट्टी बड़ा जैन मन्दिर	१५३६	मू.
२५०	कलकत्ता, तुलापट्टी बड़ा जैन मन्दिर	१५४६	

पूर्ण चन्द्र नाहर : जैन लेख संग्रह भाग १-२-३

८०	कासिम बाजार, नमिनाथ मं.	१७७६	पा.
१८२	पावापुरी, जल मन्दिर	१६३५	पा.
१६१	पावापुरी, गांव मन्दिर	१६६८	पा.गण.
२६०	वैभारगिरि	१८३०	पा.गण.
२७१	कुंडलपुर	१६८६	पा.
१४६८	आगरा, साहगंज, दादावाड़ो	१६४४	पा.

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

१६२३	लखनऊ, हीरालाल चुन्नीलाल का घर देरासर	१९२४	पा.
१६६७	नवराई, धर्मनाथ मन्दिर	१९१०	पा.
१८२५	मधुवन, प्रतापसिंह का मंदिर	१९३१	पा.
२४३३	जैसलमेर, महावीर मन्दिर	१६०६	मू.

नाहटा : बीकानेर जैन लेख संग्रह

११८८	बीकानेर, भांडासर जी का मं.	१८९०	पा.
१२७०	,, महावीर मन्दिर (वैदों का)	१९४५	मू.
१४२३	,, ऋषभदेव मन्दिर (नाहटों की ग.)	१६९०	मू.
१५५६	,, अजितनाथ मन्दिर (कोचरों की ग.)	१५२३	मू.
१५९५	,, पार्श्वनाथ मन्दिर (कोचरों की ग.)	१८९७	मू.
१६६७	,, कुंथुनाथ मन्दिर (रांगड़ी)	१९४३	पा.
१७०९	,, महावीर मन्दिर (बोहरों की सेरी)	२००२	मू.
१८०४	,, शान्तिनाथ मन्दिर (नाहरों को ग.)	१९६७	मू.
२०३७	,, रेल दादाजी	१९८१	म.

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

म. विनय सागर : प्रतिष्ठा लेख संग्रह भाग २

३०५	सांगानेर, महावीर मन्दिर	१७१९	पा. त्रय
५९९	अजमेर, गौडी पार्श्व मं.	१९१९	मू.
६७९	जयपुर, पंचायती मन्दिर	१९६७	पा.युग्म

जैन तीर्थ सर्व संग्रह भाग १ खंड १–२, भाग २

कोष्ठक नं.

१०९९	ऊंझा, कुन्थुनाथ मन्दिर	१२४०	मू.

इसके अतिरिक्त इस संग्रह के विशेष नोंध (विवरण) में कहीं भी संवत् का उल्लेख प्राप्त नहीं है, तथापि गौतम-मूर्तियों का उल्लेख महत्त्व पूर्ण होने से कोष्ठक के क्रमांकानुसार सूची प्रस्तुत है :—

कोष्ठक क्रमांक.	स्थल एवं मंदिर नाम	मूर्ति/चरण
९	अहमदाबाद (सामलानी पोल) श्रेयांसनाथ मन्दिर	मू.
१०	,, ,, महावीर मन्दिर	मू.
२३	,, (डाही नी खड़की) विमलनाथ मन्दिर	मू.
२६	,, (घांची नी पोल) शान्तिनाथ मन्दिर	मू.
३२	,, (खेतर पाल नी पोल) सम्भवनाथ मन्दिर	मू.

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

३६	अहमदाबाद (नागजी भूदरनी पोल) शान्तिनाथ मन्दिर	मू.
४१	,, (सूरदास शेठनी पोल) आदिनाथ मन्दिर	मू.
४२	,, (सम्मेत शिखर नी पोल) पार्श्वनाथ मन्दिर	मू.
२४४	कपडवंज, शान्तिनाथ मन्दिर	मू.
४६६	सूरत, (गोपीपुरा खाड़ी पर) आदिनाथ मन्दिर	मू. धातु
५१५	सूरत, (उमरवाडी) पार्श्वनाथ मन्दिर	मू. धातु
६१५	वापी, अजितनाथ मन्दिर	,, धातु
६३२	पाटण, (मणीआती पाडो) सहस्त्रकूट मन्दिर	,, ,,
११४१	लींच, आदिनाथ मन्दिर	,, ,,
११६२	देकावाडा, पद्मप्रभु मन्दिर	,, ,,
१२११	वडसमा, अजितनाथ मन्दिर	,,
१२६८	दहेगाम, मुनिसुव्रत मन्दिर	,, चाँदी
१३४६	वीजापुर, चिन्तामणि पार्श्व. मन्दिर	,,
१३६८	माणसा, आदिनाथ मन्दिर	,, धातु
१३६६	माणसा, नेमिनाथ मन्दिर	,, चांदी
१४२८	लींबडो, शान्तिनाथ मं. जूनूं	,,
१४५४	वांटावदर, चन्द्रप्रभ मन्दिर	,,
१५०१	जामनगर, नेमिनाथ मन्दिर	,,
१६८६	जेसर, महावीर मन्दिर	,,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

१७२४	भावनगर, गौडी पार्श्व. मन्दिर	मू.
१८१३	प्रभास पाटण, अजितनाथ मन्दिर	मू.
२०२३	जोधपुर, शान्तिनाथ मन्दिर	मू.
२०४२	फलोधी, महावीर मन्दिर	मू.
२०८६	लोहावट, चन्द्रप्रभ मन्दिर	मू.
२०९६	पाली, शान्तिनाथ मन्दिर	मू.
२१७६	समदडी, पार्श्वनाथ मन्दिर	मू. तीन हैं
२१७९	बागरा, पार्श्वनाथ मन्दिर	मू.
२३२२	प्रतापगढ़, महावीर मन्दिर	मू.
२६७४	सेत्राडी, वासुपूज्य मन्दिर	मू.
२९७२	चांवडेरी, आदिनाथ मन्दिर	मू.
३१३५	रतलाम, चन्द्रप्रभ मन्दिर	मू. धातु
३२६२	बरवाहा (बडवाई) विमल. मन्दिर	मू.
३५५२	कानोड, आदिनाथ मन्दिर	मू. धातु २
३८४३	डूंगरपुर, आदिनाथ मन्दिर	मू.
३९१४	पूना सीटी, गोडी पार्श्व. मन्दिर	मू.
४२६०	लखनउ. मुनिसुव्रत मन्दिर	मू. धातु

इन प्रकाशित उल्लेखों के अतिरिक्त भी शताधिक स्थानों पर गौतम स्वामी की पादुकायें एवं मूर्तियां प्राप्त हैं, जिनकी शोध अनिवार्य हैं। विक्रम की २१ वीं शताब्दी में तो प्रचुर परिमाण में गौतम स्वामी की मूर्तियां प्रतिष्ठापित एवं स्थापित हो रही हैं, जो इनके प्रति अगाध श्रद्धा एवं भक्ति की सूचक हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गौतम नामांकित साहित्य

विद्यमान आगमों में जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति आदि रचनाओं का तो इन्द्रभूति के प्रश्नों पर ही आधार है और विशालकाय पंचम अंग भगवती सूत्र तो पूर्णतः ही गौतम के प्रश्नों पर ही आधारित है। आगम साहित्य के अनन्तर कुछ प्रकरण और कथा-साहित्य का प्रारम्भ भी गौतम के प्रश्नों से प्राप्त होता है।

परवर्ती आचार्यों द्वारा प्राकृत भाषा में रचित गौतम नामांकित दो लघुकृतियां प्राप्त हैं:—गौतम कुलक और गौतम पृच्छा।

गौतम कुलक में मात्र २० गाथाएँ हैं। इस पर ज्ञान-तिलक, सहजकीर्ति की संस्कृत टीकाओं और नयरंग, पद्म-विजय के भाषात्मक बालावबोध प्राप्त हैं।

गौतमपृच्छा में मात्र ६० गाथाएँ हैं। इस पर, मतिवर्धन एवं श्रीतिलक की संस्कृत टीकाएँ तथा शिवसुन्दर, सुधाभूषण, जिनसूर, मुनिसुन्दर सूरि के भाषात्मक बालावबोध प्राप्त हैं।

संस्कृत रचनायें—

महाकाव्य—संस्कृत महाकाव्य के रूप में गौतम स्वामी से सम्बन्धित स्वतन्त्र एवं मौलिक रूप से एक मात्र रचना है—गौतमीय महाकाव्य। इसके प्रणेता हैं खरतरगच्छीय उपाध्याय रामविजय प्रसिद्ध नाम रूपचन्द्र। रचना संवत् वि. १८०७ है। कृति अर्वाचीन अवश्य है, किन्तु है वैशिष्ट्य पूर्ण एवं महत्वपूर्ण। इस पर क्षमाकल्याणोपाध्याय विरचित टीका (र. सं. १८५२) भी प्राप्त है। यह काव्य प्रकाशित भी हो चुका है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

स्तोत्र—गौतम स्वामी के गुण-वर्णन रूप संस्कृत में स्तोत्र भी प्राप्त हैं। सब से प्राचीनतम स्तोत्र श्रीवज्रस्वामी कृत माना जाता है। तत्पश्चात् जिनप्रभसूरि (१४वीं शती) के तीन स्तोत्र, मुनिसुन्दरसूरि, देवानन्दसूरि, धर्महंस के एवं एक अज्ञातकर्तृक स्तोत्र प्राप्त हैं। इनके अतिरिक्त ३ अष्टक और २ स्तुतियां भी प्राप्त हैं।

भाषा साहित्य—आर्य वज्रस्वामी रचित स्तोत्र और जिनप्रभसूरि के तीन स्तोत्रों के पश्चात् भाषा-साहित्य में अपभ्रंश से प्रभावित प्राचीन मरु-गुर्जर भाषा में गौतम गुण-वर्णनात्मक यदि कोई प्राचीन कृति है तो वह एक मात्र है—वि. सं. १४१२ में खरतरगच्छीय विनयप्रभोपाध्याय रचित गौतमरासु। इस रास की प्रसिद्धि अत्यधिक हुई। आज भी यह रास लाखों जैन नर-नारियों को कण्ठस्थ है और प्रतिदिन प्रातःकाल में इसका पाठ करते हैं।

इस गौतमरास के पश्चात् तो १७वीं शताब्दी से गौतम स्वामी के नाम से अनेक कवियों ने मरु-गुर्जर भाषा में भास, सन्धि, रास, छन्द, स्तवन, स्वाध्याय, चैत्यवन्दन, चौपाई, गीत, गहूंली, पद, विशिका, संज्ञक शताधिक लघु रचनायें प्राप्त हैं। इनमें से कुछ प्रकाशित हैं और कुछ अप्रकाशित हैं।

इस शताब्दी के गत दशक में गौतम स्वामी के ऊपर शोधात्मक तीन पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं:—१. गुरु गौतम स्वामी : लेखक—रतिलाल दीपचन्द देशाई (गुजराती में), २. इन्द्रभूति गौतम : एक अनुशीलन : लेखक—गणेशमुनि शास्त्री, ३. गणधर गौतम निर्वाण महोत्सव स्मारिका।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गौतमरासकार महो० विनयप्रभ

गौतम रास के प्रणेता महोपाध्याय विनयप्रभ सुविशुद्ध खरतरगच्छ की परम्परा में हुए हैं। ये प्रकट प्रभावी युगप्रधान पदधारक दादा जिनकुशलसूरि जी के स्वहस्त दीक्षित शिष्य थे। इनके सम्बन्ध में यत्र-तत्र जो स्फुट उल्लेख प्राप्त होते हैं, वे हैं:—

खरतरगच्छालंकार युगप्रधानाचार्य गुर्वावली (पृ. ७६) के अनुसार वि. सं. १३८२ वैशाख सुदि ५ के दिन भीमपल्ली (भीलडियाजी) में साधुराज वीरदेव सुश्रावक कारित दीक्षा, मालारोपणादि नन्दी महामहोत्सव के समय, जिनकुशलसूरिजी ने इनको दीक्षा प्रदान कर इनका विनयप्रभ नामकरण किया था। इसमें विनयप्रभ के लिये क्षुल्लक शब्द का प्रयोग किया गया है, अतः क्षुल्लक शब्द बाल्य/किशोर अवस्था का बोधक होने से अनुमान कर सकते हैं कि दीक्षा ग्रहण के समय विनयप्रभ की अवस्था १० से १५ वर्ष की होनी चाहिए। फलतः इनका जन्म १३६७ से १३७२ के मध्य हुआ हो, ऐसी कल्पना कर सकते हैं।

आचार्यश्री ने विनयप्रभ के साथ ही मतिप्रभ, हरिप्रभ और सोमप्रभ क्षुल्लकों को तथा कमलश्री, ललितश्री क्षुल्लिकाओं को भी दीक्षा प्रदान की थी। इनमें से सोमप्रभ और कमलश्री क्षुल्लिका भाई-बहिन थे। इन दोनों के जन्म नाम समर एवं कील्हू थे। सोमप्रभ का जन्म वि. सं. १३७५

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

में पालनपुर में हुआ था। यही सोमप्रभ आगे चलकर दादा जिनकुशलसूरिजी के चौथे पाट पर जिनोदयसूरि के नाम से गच्छनायक बने थे।

विनयप्रभ कहाँ के निवासी थे ? माता-पिता का क्या नाम था ? आदि उल्लेख प्राप्त नहीं हैं। अधिक सम्भावना यही है कि ये खंभात के ही निवासी हों।

क्षमाकल्याणीय पट्टावली के अनुसार तत्कालीन गच्छनायक जिनलब्धिसूरि जो कि विनयप्रभ के सहपाठी भी थे, ने इन्हें उपाध्याय पद प्रदान किया था। पट्टावली में संवत् का उल्लेख नहीं है, तदपि अनुमान है कि वि. सं. १३९४ और १४०६ के मध्य ही ये उपाध्याय बने होंगे।

वि. सं. १४३१ में आचार्य जिनोदयसूरि ने वयोवृद्ध गीतार्थप्रवर लोकहिताचार्य जो उस समय अयोध्या में विराजमान थे, को एक विशाल एवं श्रेष्ठ विज्ञप्ति महालेख भेजा था। उसमें उल्लेख आता है[1]—

मंत्रीश्वर वीरा और मंत्रीश्वर सारंग ने सं. १४३१ में नरसमुद्र से सिद्धाचल का यात्रा-संघ जिनोदयसूरि की अध्यक्षता में निकाला था। यह संघ प्रयाण करता हुआ घोघावेलकुल (घोघा बन्दर) स्थान पर पहुँचा और तत्र स्थित नवखण्ड पार्श्वनाथ की पूजा-अर्चना की। घोघा में ही विराजमान महोपाध्याय विनयप्रभजी से मिलकर गच्छनायक जिनोदय सूरिजी हर्षविभोर हो उठे। मिलन के हर्षातिरेक का वर्णन

---

1. विज्ञप्ति लेख संग्रह प्रथम भाग संपादक—मुनि जिनविजय

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

करते हुए लिखा है:—"गो-दुग्ध में मिश्री, व्याख्यान के रस में मधुर सुभाषित की भांति आह्लादजनक, गच्छभार निर्वाह में अपने विशिष्ट सहयोगी/सहायक, समस्त विद्या नदियों के समुद्र (श्री विनयप्रभोपाध्याय) से संगम बहुत दिनों के बाद हुआ।" इन उपमाओं से विनयप्रभोपाध्याय का गच्छ में कितना महत्वपूर्ण स्थान था इसका आभास मिलता है। आचार्य जिनोदयसूरि के अत्याग्रह से विनयप्रभ भी इस संघ यात्रा में सम्मिलित हुए। (पृ. २७)

शत्रुजंय तीर्थ की यात्रा-पूजा करने के पश्चात् संघ गिरिनार तीर्थ की यात्रा के लिये चल पड़ा। महोपाध्याय विनयप्रभ शारीरिक दृष्टि से सशक्त न थे, अतः वे संघ के साथ गिरिनार तीर्थ न जाकर स्तम्भतीर्थ (खम्भात) चले गए।
(पृ. ३१)

वि. सं. १४३२ भाद्रपद वदि ११ को पाटण में जिनोदयसूरि का स्वर्गवास हुआ और १४३३ फाल्गुन कृष्णा ६ के दिन पाटण में ही लोकहिताचार्य ने जिनराजसूरि को पट्ट पर स्थापित किया। इन दो वर्षों के अन्तराल में महोपाध्याय विनयप्रभ का नामोल्लेख कहीं देखने में नहीं आता; अतः १४३२–३३ के मध्य में ही इनका स्वर्गवास हो गया हो, ऐसा प्रतीत होता है। परम्परागत श्रुति के अनुसार इनका स्वर्गवास खम्भात में ही हुआ था।

महोपाध्याय विनयप्रभ गीतार्थ एवं सर्वमान्य विद्वान् थे। इनके द्वारा सर्जित कुछ कृतियां प्राप्त हैं, सूची इस प्रकार है :—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

१. नरवर्म चरित्र—संस्कृत पद्यबद्ध, श्लोक संख्या ४९४ : रचना संवत् १४११ कार्तिक पूर्णिमा, खंभात। श्री नाहटा बन्धुओं की सूचनानुसार उन्होंने "संवत् १४१२ वर्षे श्री विनयप्रभोपाध्यायैः श्रीस्तम्भपुरे स्थितैः सम्यक्त्वसारा चक्रे हि नरवर्म-नृपकथा" प्रशस्ति वाली १० पत्रों की तत्कालीन लिखित प्रति भावहर्षीय ज्ञान भण्डार, बालोतरा में देखी थी। इस ग्रन्थ को पं. हीरालाल हंसराज, जामनगर ने ६५–७० वर्ष पूर्व प्रकाशित किया था, पर उसमें कर्ता के सम्बन्ध में कुछ भी उल्लेख नहीं हैं।

२. गौतमरास—भाषा-प्राचीन मरु-गुर्जर, पद्य ४७ : रचना संवत् १४१२ कार्तिक शुक्ला १, खंभात। कहा जाता है कि इसकी रचना उपाध्यायजो ने अपने भाई के दारिद्र्य निवारणार्थ की थी, जो कि खंभात में ही निवास करता था।

इस रास के कर्ता के सम्बन्ध में परवर्ती कई लेखकों एवं प्रकाशकों ने "विजयभद्र या उदयवन्त" लिखकर भ्रामकता पैदा की है। रास की गाथा ४३ में स्पष्टतः "विणयपहु उवझाय थुणिज्जई" विनय-प्रभोपाध्याय का उल्लेख है।

दूसरी बात रचना सं० १४१२ के १८ वर्ष बाद की अर्थात् १४३० की लिखित स्वाध्याय पुस्तिका में यह रास और विनयप्रभ रचित कई स्तोत्र भी प्राप्त हैं। यह प्रति बीकानेर के बृहद् ज्ञानभण्डार में सुरक्षित है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

३. महावीर स्तव—(सानन्दनम्रसुरकोटिकिरीटपीठ) श्लो० २४, भाषा संस्कृत
४. विमलाचल ऋषभजिन स्तव—(विमलशैलशिरोमुकुटायतं) श्लो० २७, भाषा संस्कृत
५. शान्तिजिन स्तव—(सज्ज्ञानभानुहतमोहतमो वितानकं) श्लो० १९, भाषा संस्कृत
६. तमालताली पार्श्व स्तव पद्य ९, भाषा संस्कृत
७. वीतराग विज्ञप्ति—(मुख संमुखं नयणले) पद्य १३, भाषा प्राचीन मरु गुंजर
८. तीर्थयात्रा स्तव -- (महानन्द–महानन्द०) प० ४१, भाषा संस्कृत
९. वीतराग स्तव (देविंद नागिंद नरिंद चंद) गाथा २५, भाषा अपभ्रंश
१०. चतुर्विंशति जिन स्तव—(मोह महाभड़ भय महण रिसह) गाथा २९, भाषा अपभ्रंश
११. सीमंधर स्तव—(नमिर सुर असुर नरविंद वंदिय पयं) गाथा १४, भाषा अपभ्रंश
१२. तीर्थ माला स्तवन—(पणमिय जिणवर चलणे) गाथा २५, भाषा अप्रभ्रंश

इस तीर्थ माला स्तवन को श्री भंवरलाल जी नाहटा ने गुजराती विवेचन के साथ "जैन सत्य प्रकाश" के वर्ष १७ अंक १ में प्रकाशित किया था। इस महत्वपूर्ण तीर्थ माला स्तवन में स्थान—तीर्थ स्थान, वहाँ के मूलनायक व तत्कालीन बिम्ब संख्या आदि का भी उल्लेख है। लेखक ने विचरण करते, तीर्थ-यात्रा करते हुए हांसी से लगाकर दिल्ली, मथुरा, हस्तिनापुर, राजस्थान और गुजरात-सौराष्ट्र के समस्त तीर्थों

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

के नाम इस स्तवन में दिये हैं और अन्त में खंभात के तत्कालीन समस्त मन्दिरों का वर्णन देकर इस स्तवन को पूर्ण किया है। शोधार्थियों के लिये अत्यन्त प्रामाणिक एवं उपयोगी होने से इसमें वर्णित स्थान, जिनालय और मूलनायकों की नामावली यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

स्थान	मूलनायक
आसीय (हांसी)	पार्श्वनाथ
कन्नाणइ (कन्नाणा)	वीर
ढीली (दिल्ली)	शान्ति, वीर, पार्श्व, नेमि
हत्थिणाउर (हस्तिनापुर)	शान्ति, कुंथु, अर, मल्लि
महुरा (मथुरा)	पार्श्व, सुपार्श्व
नरहड़ि (नरभट)	पार्श्वनाथ
नहुयापुर (नहवा)	पार्श्वनाथ
झंझणपुर (झुंझुणु)	आदि, वीर
नागउर (नागोर)	चौवीसटा, आदि, वीर
रूण	शान्तिनाथ
फलवद्धी (फलोधी)	पार्श्वनाथ
तलवाड़ा (डूंगरपुर राज्य)	शान्तिनाथ
जीराउलि (जीरावलाजी)	पार्श्वनाथ
बाहड़मेर	ऋषभ, शान्ति
जालउर (जालोर)	वीर
भीमपल्ली	वीर
वायड़पुरि	वीर
काकरि	पार्श्व (कुमर विहार)
थाराउद्र (थराद)	पार्श्वनाथ

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

राडद्रह (राडधड़ा)	वर्धमान
चारोप	पार्श्वनाथ
जंघराल	आदि, नेमि, शान्ति, वीर
मडाहड़ि	वीर, पार्श्व
ब्रह्माणि	वीर, ऋषभ
सिद्धपुर	नेमिनाथ
आसाहड़	नेमिनाथ
खात्रहडि	ऋषभदेव
वागडद्रि	चन्द्रप्रभ
पाटण	पंचासरा पार्श्व, आदि, शान्ति (विधि चैत्य), सुविधि, मल्लि, पद्मप्रभ, चन्द्रप्रभ, वासुपूज्य, शीतल, ऋषभदेव १०, शान्ति ६, वीर ६, पार्श्व १०, नेमि ७ (कुल ५४ मूलनायक)
सलखणपुर	पार्श्व, शान्ति
पाडल	नेमिनाथ
संखीसर (शंखेश्वर)	पार्श्वनाथ
पंचासर	वीर
मंडलपुर	वीर
वडउद्रइ (वडोदरा, बडौदा)	आदिनाथ
वीरमपुर	वीर
वडवाणि (वढवाण)	ऋषभदेव
तालज्झय (तालध्वज, तलाजा)	पार्श्व, शान्ति
पालीताणा	पार्श्व, वीर, पाजपर नेमि
शत्रुंजय	आदिनाथ, पुंडरीक गणधर,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

	अष्टापद, बिहरमानजिन, पांडव, रायण पगला, खरतर-वसही (आदि, नेमि, पार्श्व, कल्याणक बिंब ७२ देहरी, पंचमेरु, ८५ बिंब अष्टापद, सम्मेत शिखर, नंदीश्वर आदि १६०० बिंब) सरगारोहणि, ऋषभ, नमि-विनमि, वाल्हाव-सही, कवडयक्ष, छीपावसही, आदि, शान्ति, मरुदेवी
महुवा	वीरप्रभु
ऊना	वीरप्रभु
अजाहरा	पार्श्वनाथ
दीव	अदबुद आदि जिन, पार्श्व
कोडीनारा	नेमिनाथ
देव पाटण	चन्द्रप्रभ, पार्श्व
मंगलपुर	पार्श्वनाथ
वउणथली	वीर
जूनागढ	पार्श्वनाथ
गिरनार	नेमिनाथ ५२ जिनालय, वस्तिग वसही—आदिनाथ, तीन कल्या-णक, अष्टापद, सम्मेत शिखर, शाम्ब-प्रद्युम्न
अर्बुदगिरि	ऋषभ, नेमि
तारणि (तारंगा)	अजितनाथ
ईडर	आदिनाथ

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भरुअच्छ (भरौंच)	मुनिसुव्रत
सेरिसा	लोडण पार्श्वनाथ
धवलक्क (धोलका)	कलिकुंड पार्श्वनाथ, जिणहर-वसही, पार्श्वनाथ
खंभनयर (खंभात)	पार्श्व, विधि चैत्ये अजित-नाथादि चौवीस, अष्टापद, वीर, वासुपूज्य सीमंधर, पद्म-प्रभ, अभिनन्दन, शीतल, ऋषभ, ११, पार्श्व ६, शान्ति, २ नेमि २, चन्द्रप्रभ १, अजित १, सुविधि १, मल्लि १, आदि ३४ देवालयों में ५४ मूल नायक।

क्रमांक ८ पर निर्दिष्ट तीर्थयात्रा स्तव पद्य ४१ की संस्कृत कृति में भी तीर्थंकरों के क्रम से तीर्थों के नाम एवं संक्षिप्त विवरण प्राप्त हैं। उपर्युक्त अपभ्रंश भाषा की तीर्थ-माला स्तवन से संस्कृत में निबद्ध तीर्थयात्रा स्तव में निम्नोक्त तीर्थों के नाम अधिक प्राप्त होते हैं।

कुंकण–सोपारक जीवितस्वामी, खिसरंडो (लघु शत्रुंजय), वोणाग्राम, संजातनगर, आशापल्ला–उदयनविहारे ऋषभ, तिलंगदेश–पुरिमुमिला, प्रल्हादनपुर, आरासण–आदी-श्वर, नेमि, पार्श्व, वीर, कासह्रद, नवसारो–अजित, पार्श्व, दशपुर–सुपार्श्व, मुरमिपुर (कर्णाटक), संजोतपुर–सुविधि, विद्युतपुर–वासुपूज्य, नद्यालंदपुर (कर्णाटक) शान्तिनाथ, देवागिरि–मल्लि, पार्श्व, वीर (पृथ्वीधर-पेथड़ कारित), प्रति-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ष्ठान (महाराष्ट्र), दर्भकावती, खोहरि सामणी (मेदपाट), करहेटक, श्रीपुर (अंतरीक्ष–महाराष्ट्र), साजौदपुर, दाहडाल (मालव), नंदरबार, खड़ी (अरडकमल पार्श्व), सिंहद्वीप, शालिकावाडा कांटावसति, फुरगापुर (कर्णाटक) रविवाटक।

इससे तत्कालीन जैन मन्दिरों और तीर्थों के विकास व ह्रास की अच्छी झांकी मिल जाती है। स्थिति-शोध के लिये इन दोनों—तीर्थमाला स्तवन व तीर्थयात्रा स्तव का अध्ययन-शोध करना आवश्यक भी है।

क्रमांक २ से १२ तक की रचनायें सं० १४३० की लिखित बड़ा ज्ञान भण्डार, बीकानेर एवं विजयधर्म लक्ष्मी ज्ञान मन्दिर आगरा की हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त हैं।

जिस प्रकार याकिनीमहत्तरासूनु आचार्य हरिभद्रसूरि ने अपनी कृतियों में स्वयं के लिये "भवविरह" का प्रयोग किया है, उसी प्रकार विनयप्रभ ने भी अपनी रचनाओं में अपना उपनाम "बोधिबीज" का प्रयोग किया है।

शिष्य-परम्परा–विनयप्रभ के प्रमुख शिष्य विजयतिलक और प्रमुख प्रशिष्य क्षेमकीर्ति हुए। क्षमकीर्ति से ही खरतर-गच्छ की परम्परा में एक उपशाखा प्रसिद्ध हुई जो क्षेमकीर्ति शाखा या खेमधाड़ शाखा के नाम से विख्यात हुई। इस परम्परा में तपोरत्न, महोपाध्याय जयसोम, गुणविनयोपाध्याय, मति-कीर्ति, श्रीसारोपाध्याय, सहजकीर्ति, विनयमेरु, लक्ष्मीवल्लभ, सुप्रसिद्ध राजस्थानी भाषा के महाकवि उपाध्याय जिनहर्ष, रामविजयोपाध्याय, शिवचन्द्रोपाध्याय, महोपाध्याय अमर-सिन्धुर, रामऋद्धिसार (रामलालजी) आदि शताधिक उद्भट्ट

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

विद्वान् हुए हैं, जिन्होंने संस्कृत और राजस्थानी भाषा के साहित्य को पूर्णरूपेण समृद्ध बनाया है। आज भी शाखा के कुछ यति विद्यमान हैं। वैसे विनयप्रभ की शिष्य परम्परा में अन्तिम यति श्यामलालजी के शिष्य यति विजयचन्द्र हुए, जो कि बीकानेर की बड़ी गद्दी पर जिनविजयेन्द्रसूरि के नाम से श्रीपूज्य बने थे। इनके पश्चात् विनयप्रभ की परम्परा लुप्त हो गई है।

गौतमरास की भाषा

"गौतमरास" मरु-गुर्जर अपभ्रंश की उत्तरवर्ती काल की रचना है। अपभ्रंश की टकसाली शैली का प्रयोग इसमें नहीं है, कहीं-कहीं प्रभाव अवश्य है। देशी भाषाओं का उदय हो रहा था। इसे पूरी तरह से पश्चिमी राजस्थानी भाषा की रचना तो नहीं कहा जा सकता; पर उस काल की पश्चिमी राजस्थानी का, जो गुर्जर भाषा से अत्यधिक निकट है, प्रभाव अवश्य है।

इस रचना में पश्चिमी राजस्थान में प्रचलित अनेक शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। यथा—धन (धन्य), चउदह (चतुर्दश), कल्लाण (कल्याण), करिज्जइ (करीजे), विलसइ (विलसे) पूनम (पूर्णिमा), पढम (प्रथम), नयरी (नगरी), होसइ (होसी-भविष्यति), आवियो (आया), होस्या (होंगे), वयण (वचन), थाप्या (स्थापित), डोलइ (डोले), दिज्जइ (दीजे) आदि।

गुर्जर भाषा के रूपों का भी अभाव नहीं है। यथा—इणि (इस), नरवइ (नरपति), गिहवासे (गृहवासे),

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तिहुअण (त्रिभुवन), नाण (ज्ञान), वालियुं, हेजइ, कनासुं, कीधलुं, केड़इ, जेम, इम, कनइं, इग्यार (एकादश), जंपइ (जल्पति), रणरणकन्ता, झलहलकन्ता, पइट्ठा, जुत्तउ, केवलनाणी आदि।

टकसाली अपभ्रंश के कुछ शब्द इस प्रकार हैं—पुहुमि (पृथ्वी), ठव्यउ (स्थापित), पडिबोह (प्रतिबोध), पेखवि, वासम्मि, पउमेण, जिणहर, गणहर (गणधर), निय (निज), अम्हां, हुअउ (भूतः), रूव (रूप), चमक्किय (चमत्कृतः), कवणसु, उज्जायकर (उद्योतकर), इन्दभूई (इन्द्रभूति), चउविह (चतुर्विध) आदि।

इन शब्द-रूपों को देखकर यह कहा जा सकता है कि गौतमरास की भाषा मरुभूमि की पश्चिमी राजस्थानी और गुर्जर भूमि की मिली जुली भाषा है। साहित्यिक भाषा का टकसाली रूप इसमें उतना नहीं है जितना बोलचाल की सर्व-साधारण की भाषा का रूप विद्यमान है।

गौतमरास में अनेक-अनेक छन्दों का प्रयोग मिलता है। इससे पता चलता है कि रचनाकार का भाषा के ऊपर पूरा-पूरा अधिकार है। वाक्य रचना बड़ी सरल है। बोधगम्य है। छोटे-छोटे वाक्यों में गम्भीर बात को कहने की क्षमता इस रचना में अच्छी तरह से देखी जा सकती है।

महोपाध्याय विनयप्रभ के वैदुष्य पर एवं गौतमरास के वैशिष्ट्य पर मेरे सन्मित्र डॉ० हरिराम आचार्य, प्रोफेसर संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर ने विस्तार से प्रकाश डाला ही है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयम गुरु रासउ :
एक साहित्यिक पर्यालोचन

☐ डॉ० हरिराम आचार्य

रासो-परम्परा का प्रादुर्भाव कब से हुआ—यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काल में ही हमें दो सुप्रसिद्ध रासो ग्रन्थ मिलते हैं—चन्द बरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो" और नरपति नाल्ह कृत "बीसलदेव रासो"। किन्तु इन दोनों रचनाओं में कथानक, छंद, रस एवं प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से इतना अन्तर है कि इनके आधार पर रासो प्रबन्ध का कोई लक्षण निश्चित नहीं किया जा सकता।

सौभाग्य से यह रासो परम्परा हिन्दी से भी पूर्व अपभ्रंश में और हिन्दी के समानान्तर गुजराती साहित्य में भी उपलब्ध होती है। अपभ्रंश के "मुञ्जरास" का उल्लेख 'सिद्ध हैम व्याकरण' (हेमचन्द्र ११९७ वि०) और 'प्रबन्धचिंतामणि' (मेरुतुंग १३६१ वि०) में हुआ है। दूसरा ग्रन्थ है—'सन्देश-रासक' नामक प्रबन्ध जिसमें २२३ छन्दों में प्रवास जनित विरह का वर्णन किया गया है। एक अन्य रासो ग्रन्थ जिनदत्त-सूरि विरचित "उपदेश रसायन रास" भी प्राप्त हुआ है। यह धार्मिक परम्परा की रचना है। इसमें कोई कथा-प्रबन्ध नहीं है। केवल कुल ८० चतुष्पदियाँ हैं। छंद भी एक ही है। विषय की दृष्टि से इसमें मात्र जैन धर्म का प्रतिपादन किया गया है। इस शांत रस प्रधान ग्रन्थ की रचना सं० १२१० वि०

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

से पूर्व की है क्योंकि १२११ में जिनदत्तसूरि का स्वर्गवास हो गया था।

राजस्थानी-गुर्जर साहित्य की रासो परम्परा में जितनी रचनाएँ लिखी गई वे सब जैन कवियों की हैं और जैन धर्म से सम्बद्ध हैं। छोटे आकार के ये ग्रन्थ संख्या में अनेक हैं और कहा जाता है कि वि० सं० १७०० तक प्रायः प्रत्येक दशाब्दी में एक नहीं अनेकों ग्रन्थ रचे जाते रहे हैं। इनमें सबसे प्राचीन "भरतेश्वर-बाहुबली रास" और "बुद्धिरास" हैं जिनके रचयिता शालिभद्रसूरि हैं, जो वि० सं० १२४१ में उपस्थित थे। इनमें से प्रथम में भगवान् ऋषभदेव के दो पुत्रों के बीच राजसत्ता के लिए परस्पर संघर्ष की कथा वीर रस प्रधान शैली में २०३ छंदों में निबद्ध की गई है। दूसरी रचना में केवल नीति प्रधान उपदेश के ६३ छन्द हैं। इससे रासो-परम्परा की प्राचीनता तो प्रमाणित होती है किन्तु इसके स्वरूप-निर्धारण की समस्या नहीं सुलझती।

विद्वानों ने "रासो" शब्द की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसे "रसायन" का अपभ्रंश मानते हैं (हिन्दी साहित्य का इतिहास)। काशी के विन्ध्येश्वरी प्रसाद दुबे के मतानुसार रासो का मूल शब्द "राजयशः" है, तो अन्य विद्वान ने इसे "रहस्य" से बना बताया है। श्री पोपटलाल शाह इसे "रस" से व्युत्पन्न मानते हैं। "राजसुत" शब्द से भी इसकी व्युत्पत्ति बताई गई है। "पृथ्वीराज रासो" के सम्पादक मोहनलाल विष्णु पंड्या के अनुसार "रासो" शब्द संस्कृत के "रास" या "रासक" शब्द से बना है। यही मत प्रामाणिक है, शेष कल्पना-मात्र लगते हैं। संस्कृत का

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

"रासक" शब्द अपभ्रंश में "रासउ" हुआ और मध्यकालीन राजस्थानी तथा व्रजभाषा में "रासौ" होकर आधुनिक काल में "रासो" के रूप में प्रचलित हो गया। रासो की उपलब्ध प्राचीनतम प्रति (लिपिकाल संवत् १६६७) में ग्रन्थ उल्लेख "रासउ" नाम से ही हुआ है। हेमचन्द्र ने "काव्यानुशासन" में काव्य के गेय भेदों में "रासक" का परिगणन किया है। मूलतः "रास" नृत्य का ही एक रूप था। कृष्ण और गोपियों का रास नृत्य प्रसिद्ध है। हारावली कोष में रास का अर्थ "गोदुहां क्रीड़ा" अर्थात् गोपों का खेल-विशेष दिया हुआ है।

आगे चलकर रास-नृत्य के साथ गीतों का—गेय पदों का मेल हुआ जिसे अभिनय के साथ प्रस्तुत किया जाने लगा। रास लीला इसी प्रकार का गेय-नाट्य है। धीरे-धीरे रास के साथ गाये जाने वाले गीत कथा प्रधान होने लगे। कालांतर में नृत्य का अंश गौण हो गया और कथा-काव्य को ही रास या रासक कहा जाने लगा। प्राचीन राजस्थानी और गुजराती में यह परिपाटी जैन विद्वानों ने चलाई और विपुल परिमाण में "रास साहित्य" की रचना की। जैनों से यह शैली भाट, चारण आदि राज-दरबारों से सम्बद्ध कवियों ने ग्रहण की। इनकी रचनाओं में वीर-कार्यों और युद्धों का वर्णन अनिवार्य अग बन गया। भाटों ने अपने ग्रन्थों में कथानायक के नाम के साथ "रासो" शब्द का प्रयोग अपनाया। इस प्रकार रासो साहित्य का विकास जैन-कवियों द्वारा रचित "रास साहित्य" से हुआ। छन्दों की विविधता रास-परम्परा में भी थी और रासो-परम्परा में भी। अन्तर केवल इतना हुआ कि रास परम्परा में गेय छन्दों का प्रयोग अधिक मात्रा में था जबकि रासो—साहित्य में पाठ्य छन्दों का ही प्राधान्य है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अपभ्रंश के रीति ग्रन्थों में विविध छन्दों के प्रयोग को ही रासो प्रबन्ध का आधारभूत लक्षण बताया गया है। विरहांक रचित "वृत्त-जाति-समुच्चय" (४/३८) में कहा गया है—

अडिलाहिं दुवहएहिं व मत्तारड्ढहिं तह अ ढोसाहिं।
बहुएहिं जा रइज्जइ सो भण्णइ रासओ णाम।

जिसमें बहुत से अडिल्ला, दोहा, मात्रा रड्ढा और ढोसा छन्द होते हैं—ऐसी रंजक रचना "रासक" कहलाती है।

स्वयंभू (सं० ९५०) ने अपने ग्रन्थ "स्वयंभू छंदस्" (८/२४) में लिखा है:—

घत्ता छड्डुणिआहिं पद्धडिआहिं सुअण्णरूएहिं।
रासाबंधो कव्वे जणमण-अहिरामओ होइ॥

अर्थात् काव्य में "रासाबंध" अपने घत्ता, छड्डुणिआ, पद्धडिआ तथा अन्य रूपकों (वृत्तों) के कारण "जनमन अभिराम" होता है।

प्राचीन रास-परम्परा के अन्तर्गत ही "गौतम-रास" एक उल्लेखनीय कृति है। युगप्रधान जिनकुशलसूरि के दीक्षित शिष्य विनयप्रभोपाध्याय द्वारा विरचित "गौतम रास" (गोयम गुरु रास) वि० सं० १४१२ की कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा के दिन लिखा गया था (पद्य संख्या ४५)। यह तिथि प्रमुख गणधर गौतम स्वामी के कैवल्य ज्ञान प्राप्ति का दिन है। अतः जैन-परम्परा में इस दिवस का विशेष महत्व है।

गौतम रास प्राचीन मरु-गुर्जर भाषा में रचित रास परम्परा का धार्मिक काव्य ग्रन्थ है। जैन समाज में इसका

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पठन-पाठन अत्यन्त श्रद्धा के साथ किया जाता है। कुल ४७ पद्यों का यह लघुकाय रास अपनी विषयवस्तु के कारण ही विशेष आदरणीय है। इसकी कथावस्तु का सार संक्षेप निम्न-लिखित है :–

भारत क्षेत्र के मगध देश में श्रेणिक राज्य करते थे। इसी मगध में स्थित गुव्वर ग्राम में वसुभूति नामक ब्राह्मण पण्डित रहते थे। उनकी पत्नी का नाम पृथ्वी था। उनका पुत्र इन्द्रभूति रूपवान्, गुणवान एवं विद्यानिधान था। कर्मकांड में निष्णात इन्द्रभूति के ५०० शिष्य थे। इन्द्रभूति को यह अभिमान था कि विद्वत्ता में उनका समकक्ष कोई नहीं है।

एक बार महावीर स्वामी पावापुरी पधारे। वहाँ देवों ने उनके समवसरण की रचना की। जिनेन्द्र प्रभु सिंहासन पर विराजे। विमानों पर चढ़कर आये देवों ने उनका जय जयकार किया। अभिमानी इन्द्रभूति को कुतूहल हुआ कि "यह जिनेन्द्र है कौन ?" वे शिष्य-समुदाय के साथ वहाँ पहुँचे तो जिनेन्द्र प्रभु का दिव्य प्रभाव देखकर चमत्कृत हो उठे। महावीर स्वामी ने उन्हें नाम लेकर अपने पास बुलाया और वेद मन्त्रों के प्रमाण देकर उनके हृदय का संशय दूर कर दिया। इन्द्रभूति ने तत्क्षण अपने शिष्यों के साथ प्रव्रज्या/दीक्षा ग्रहण की। उनके बाद वीर विभु ने अनुक्रम से ११ अन्य याज्ञिकों को भी दीक्षा दी तथा उन्हें अपने गणधर पद पर प्रतिष्ठित किया।

गौतम स्वामी द्वारा दीक्षित जन कैवल्य का वरण कर लेते थे, किन्तु महावीर स्वामी के प्रति अतिशय अनुराग के

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कारण वे स्वयं कैवल्य से वंचित थे। उनकी स्वदेह से निर्वाण-प्राप्ति की जिज्ञासा का शमन करने के लिए महावीर स्वामी ने उन्हें अष्टापद पर्वत पर भरत निर्मित चैत्य में तीर्थंकरों के दर्शन एवं वन्दन करने का आदेश दिया। गौतम स्वामी ने अष्टापद पर्वत की यात्रा की तथा जिनेन्द्र प्रतिमाओं के दर्शन किये। वहाँ १५०० तापसों को प्रतिबोधित करके लौटे, किन्तु अब तक भी वे केवलज्ञान से वंचित थे। इस पर वे उद्विग्न हो उठे। तब महावीर स्वामी ने उन्हें सान्त्वना दी—"गौतम खेद मत करो। अन्ततः हम दोनों एक ही स्वरूप को प्राप्त कर लेंगे—"होस्यां तुल्ला बेउ।"

पावापुरी में भगवान् महावीर ने कार्तिकी अमावस्या के दिन निर्वाण प्राप्त किया। किन्तु, उसके पूर्व दिवस ही उन्होंने गौतम को निकटवर्ती ग्राम में देवशर्मा को प्रतिबोध देने के लिए भेज दिया। गौतम वहाँ गये और चतुर्दशी की वह रात उन्होंने वहीं धर्म जागरण में बिताई। प्रातःकाल जब वे लौटने लगे तो देवों के मुख से उन्होंने प्रभु के निर्वाण का संवाद सुना। सुनते ही गौतम हतचेता हो गये। उन्होंने विलाप करते हुए प्रभु को उपालम्भ दिया कि निर्वाण-वेला में स्वयं से अलग भेजकर प्रभु ने उचित नहीं किया। किन्तु, तभी उनकी विचार शृंखला बदली। उन्हें वीतराग प्रभु के संकल्प का मर्म समझ में आया कि मेरे राग का उच्छेद करने के लिए ही सर्वज्ञ प्रभु ने मुझे अलग किया था। उनका मोह भंग हुआ, राग-निवृत्ति हुई और तत्क्षण ही वे केवली हो गये। उन्होंने भविक जनों को देशना दी और महावीर प्रभु के प्रथम गणधर के रूप में ९२ वर्ष की पूर्णायु में निर्वाण प्राप्त किया।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जैन परम्परा में उनका उसी प्रकार आद्य स्थान है जिस प्रकार देवों में गणपति का माना जाता है। उनके नाम का स्मरण पुण्यदायक है, कामनाओं को पूर्ण करने वाला तथा सिद्धि प्रदायक है। अतः उपाध्याय विनयप्रभ ने उनके नाम के बीजाक्षर गर्भित मंत्र का पारायण करते रहने का परामर्श दिया है। रास-काव्य की रचना तिथि तथा गौतम स्वामी के केवलज्ञान दिवस पर गौतम गुरु की उपासना से मंगल सिद्धि की कामना के साथ काव्य की समाप्ति होती है।

प्रमुख प्रतिपाद्य—उक्त कथानक के माध्यम से उपाध्याय विनयप्रभ का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है—गौतम की जीवन-गाथा का काव्य-गायन तथा उनके नाम-माहात्म्य का प्रतिपादन। प्रथम पद्य में ही कवि का कथन है कि हे भव्यजन ! मन, तन और वचन से एकाग्र होकर इस "गोयम गुरु रास" को सुनो, जिससे आपका शरीर रूपी घर गुण-गण से विभूषित हो जाय—

मण तणु वयण एकंत करिवि निसुणहु भो भविया ।
जिम निवसइ तुमि देह-गेह गुण-गण गहगहिया ।।

इसके बाद याज्ञिक ब्राह्मण इन्द्रभूति के अभिमान, महावीर प्रभु से दीक्षा ग्रहण, गौतम गणधर बनकर क्रमशः उनके कैवल्य प्राप्त करने तक की कथा २ से ३७ पद्यों तक वर्णित हुई है। तदनन्तर सात पद्यों में गौतम स्वामी के अतिशय माहात्म्य का काव्यात्मक वर्णन है तथा अन्तिम तीन पद्यों में गौतमरास की रचना-तिथि नाम-माहात्म्य तथा रास-पठन के महत्व एवं विधि का निर्देश है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय समाज में जो आद्य स्थान अनिष्टहारी मंगलकारी गणपति का है, जैन परम्परा में वही स्थान गौतम स्वामी का है। वे अनन्तलब्धि सम्पन्न एवं कल्याण-स्वरूप हैं, सौभाग्य निधि एवं गुणनिधान हैं, उनका पावन स्मरण मनोकामनाओं का कल्पतरु और महासिद्धियों का निवास है। अतः कवि विनयप्रभ ने बीजाक्षर गर्भित गौतम स्वामी के नमन का बीजाक्षर गर्भित मंत्र प्रस्तुत करते हुए उसके अनुष्ठान का निर्देश किया है। वह मंत्र है—"ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हं श्री गौतमस्वामिने नमः।" अतः स्पष्ट है कि जैन श्रावकों के लिए गौतम स्वामी का चरित्र-गायन एवं उनके पावन नाम के स्मरण अनुष्ठान का निर्देश ही उपाध्याय विनयप्रभ की इस रचना का प्रमुख प्रतिपाद्य है।

रचना-विधान—प्रथम छन्द में कवि ने जिनेश्वर महावीर को नमन करते हुए ग्रन्थ का नाम निर्देश किया है तथा भव्यजनों को इस "गोयम गुरु रासउ" के पठन द्वारा गुण-गण ग्रहण की ओर अभिप्रेरित किया है। इसके बाद कथानक का क्रम प्रारम्भ होता है। कवि पहले २ से ६ पद्यों तक वर्णन करता है फिर सातवें पद्य में पूर्वोक्त पाँच पद्यों में वर्णित कथा को सार रूप में दोहराता है। इसी प्रकार पद्य संख्या ८ से १५ तक वर्णित कथा को १६वें पद्य में सार रूप में प्रस्तुत करता है। यही क्रम २२वें, ३१वें तथा ३७वें पद्य में दोहराया गया है। कथा पद्यानुपद्य आगे बढ़ती है। वर्णित कथा की सार रूप में पुनरावृत्ति कवि का अपना प्रयोग है, इसका निर्वाह अन्त तक सुचारु रूपेण हो पाया है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अलंकार-विन्यास - कवि विनयप्रभ ने अपनी काव्य-कृति को स्थान-स्थान पर अलंकारों से मण्डित किया है। अनुप्रास, रूपक तथा उपमा उनके प्रिय अलंकार हैं। कवि द्वारा अलंकारों के विन्यास का जो कौशल प्रदर्शित किया गया है उसके कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं:-

अनुप्रास—अनुप्रास शब्दालंकार है। अपभ्रंश एवं राजस्थानी में इसे "वयणसगाई" कहा जाता है। एक ही वर्ण की अनेक बार आवृत्ति से जो वर्ण-मैत्री का चमत्कार उत्पन्न होता है, उसी को अनुप्रास कहा जाता है। इससे काव्य में एक प्रकार का कर्णप्रिय नाद-सौन्दर्य उत्पन्न होता है। यथा:—

(१) विनय विवेक विचार सार गुणगणह मनोहर।
(२) नयण वयण कर चरण जणवि पंकज जल पाडिय।
(३) दह दिसि देखइ विबुध वधू।
(४) रागज राखइ रंग भरइ।
(५) जिम सुर तरुवर सोहइ साखा।

उक्त पंक्तियों में अनुप्रास का प्रयोग सहज हुआ है, सायास नहीं।

रूपक—कवि ने अनेकत्र रूपक के प्रयोग से चमत्कार उत्पन्न किया है। रूपक अलंकार में उपमान तथा उपमेय में अभेद स्थापित किया जाता है। इसके कतिपय उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं:—

(१) चउदह विज्जा विविह रूव नारी रस लुद्धउ।
(इन्द्रभूति चतुर्दश विद्या रूपी विविध प्रकार की नारियों का रस-लुब्ध था।)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(२) तउ चढियउ घण माण गजे, इन्दभूइ भूदेव तउ ।
(ब्राह्मण इन्द्रभूति अत्यन्त अभिमान रूपी गज पर सवार हो गये ।)

उपमा—उपमान और उपमेय के सादृश्य-विधान पर आधारित उपमा अलंकार के सरल किन्तु सार्थक प्रयोग इस "रास" में कई पंक्तियों में उपलब्ध होते हैं । पावापुरी में महावीर प्रभु समवसरण में जब सिंहासन पर विराजमान हुए तो क्रोध, मान, माया, मद आदि मनोविकार ऐसे भाग खड़े हुए, जैसे दिन में चोर:—

क्रोध मान माया मद पूरा ।
जायइ नाठा जिम दिन चोरा ।।

महावीर स्वामी जग को अपने तेज से उसी प्रकार आलोकित कर रहे थे, जैसे दिनकर सूर्य अपना प्रकाश फैलाता है—

जिणवर जगि उज्जोयकर ।
तेजहि कर दिनकार ।।

गौतम स्वामी शिष्यों के साथ इस प्रकार चल रहे थे जैसे कोई गजराज अपने गज-यूथ के साथ चलता है—

लेइ आपणि साथ, चालई जिम यूथाधिपति ।

महावीर प्रभु के वचनों से गौतम स्वामी का मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान खिल उठा—

पूनम चन्द जिम उल्लसिय ।

गौतम स्वामी जैन-परम्परा में किस प्रकार प्रधान हैं, इसका वर्णन कवि ने मालोपमा अलंकार से किया है जिसकी लड़ी ३८वें पद्य से ४१वें पद्य तक चलती है ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इनके अतिरिक्त उत्प्रेक्षा (४२), व्यतिरेक (४) अतिशयोक्ति (४) आदि अलंकार भी यत्र-तत्र प्रयुक्त हुए हैं जिनसे वर्ण्य-विषय काव्यात्मक बनकर अधिक रमणीय बन गया है।

छन्द प्रयोग—प्रारम्भ में रासो लक्षण के अन्तर्गत लिखा जा चुका है कि रासो काव्य की मुख्य पहचान उसमें प्रयुक्त विविध छन्दों के कारण ही मानी गई है। प्रस्तुत "गोयम रास" में उसी परम्परा का सफल निर्वाह किया गया है। कविवर विनयप्रभ ने अपभ्रंश में प्रयुक्त अनेक छन्दों में से कतिपय का चयन कर उन्हें अपने रास में निबद्ध किया है तथा अपने पिंगल-नैपुण्य का परिचय दिया है।

प्रारम्भ में छः पद्यों में रोला, ७, १६, २२, ३१ में चारु सेना नामक रड्डा-वस्तु छन्द, ८ से १५ तक चौपाई, १७ से २१ तक उल्लाला, २३ से ३० तक के पद्यों में सोरठा से मिलते जुलते किसी देश्य छन्द का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार ३२ से ३७ तथा ३८ से ४७ पर्यन्त पद्यों में प्रयुक्त छन्द भी देश्य हैं जिनका नाम शोध का विषय है। कुल ४७ पद्यों के काव्य में इतने विविध छन्दों का प्रयोग इस तथ्य का द्योतक है कि कवि को रास काव्य की लक्षण-परम्परा का ज्ञान था जिसका उसने सफल निर्वाह प्रस्तुत काव्य में कर दिखाया है।

रस-परिपाक - यद्यपि धार्मिक काव्य में रस-निष्यन्द के लिए स्थान कम ही होता है, तथापि काव्य में ऐसे कुछ स्थल भी हैं जहाँ पाठक पर कवि रस के सुरम्य छींटे डालता चलता है। इन्द्रभूति के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए ३ से ५ पद्यों में शृंगार रस का स्पर्श है, तो समवसरण के समय महावीर प्रभु के दिव्य प्रभाव का वर्णन करते हुए कवि अद्भुत रस का चित्रण करता है (पद्य संख्या ८ से १९)। पद्य ३३

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

से ३६ तक गौतम स्वामी के विचार मन्थन में शान्त रस का परिपाक दृष्टिगोचर होता है जो वस्तुतः काव्य का प्रमुख रस है।

मार्मिक प्रसंग—इस लघुकाय काव्य में भी नायक इन्द्रभूति के गर्वोद्गार, महावीर प्रभु के वचनों द्वारा गौतम के के संशय का निराकरण, गौतम की जिज्ञासा तथा महावीर प्रभु के निर्वाण के समय गौतम का विलाप एवं उपालम्भ आदि ऐसे प्रसंग हैं जिनका कवि ने अत्यन्त हृदयस्पर्शी एवं मार्मिक चित्रण किया है।

भाषा—रास काव्यों का मुख्य लक्ष्य अपने प्रमुख प्रतिपाद्य को सरल भाषा में निबद्ध करके जन-जन तक पहुँचाना होता था। इस लक्ष्य की पूर्ति "गोयम रास" में अक्षरशः हुई है। अपभ्रंश से प्रभावित प्राचीन मरु-गुर्जर भाषा का नितान्त सरल काव्यमय रूप इस काव्य में आद्योपान्त उपलब्ध होता है। भाषा में कहीं जटिलता नहीं है। यही कारण है कि जैन परम्परा में केवल अपने कथ्य के कारण ही नहीं, अपितु अपनी सुबोध कथन-शैली एवं सरल भाषा के कारण यह काव्य पर्याप्त लोकप्रिय हुआ है।

उपर्युक्त पर्यालोचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपाध्याय विनयप्रभ काव्य प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने गौतम स्वामी की गुण-गाथा के लिए तत्कालीन अपभ्रंश भाषा की लोकप्रिय जणमण-अहिराम रास परम्परा को चुना और विविध छन्दों और सरस अलंकारों के प्रयोग से अपनी रचना को विभूषित करके साहित्य जगत् को एक अनुपम काव्य-रत्न प्रदान किया जो आज भी जैन परम्परा का कण्ठहार बना हुआ है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गौतम रास : परिशीलन

हिन्दी अनुवाद सहित

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

खरतरगच्छनभोमणि युगप्रधान दादा
श्री जिनकुशलसूरिजी के शिष्य रत्न
श्री विनयप्रभोपाध्याय विरचित

गौतम रास

वीर जिणेसर चरण-कमल कमलाकय-वासउ,
पणमवि भणिसुं सामि साल गोयम गुरु रासउ।
मण तणु वयण एकंत करिवि निसुणहु भो भविया,
जिम निवसइ तुमि देह-गेह गुण-गुण गहगहिया ।।१।।

जिनके चरण कमलों में कमला/लक्ष्मी ने निवास कर रखा है ऐसे जिनेश्वर देव भगवान् महावीर स्वामी को नमस्कार कर, उनके प्रथम शिष्य गणधर गौतम गोत्रोय इन्द्रभूति प्रसिद्ध नाम गौतम स्वामो के सारयुक्त गुणों की मैं रास के माध्यम से स्तवना करूंगा। हे भव्यजनों! आप मन, तन और वाणो को एकाग्र कर ध्यानपूर्वक इस रास को सुनो, जिससे आपका शरोर रूपो घर गुणगणों से मण्डित/शोभित हो जाए ।।१।।

पद्य १ से ६ तक मात्रिक छन्द रोला नामक है, चतुष्पदी है और प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ है। विराम १४-१० मात्रा पर है।

जंबुदीव सिरि भरहखित्त खोणीतल मंडण,
मगह देस सेणिय नरेस रिउदल-बल खंडण।
धण वर गुव्वर गाम नाम जिहं गुणगण सज्जा,
विप्प वसइ वसुभूइ तत्थ तसु पुहवी भज्जा ।।२।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूद्वीप स्थित भरत क्षेत्र में पृथ्वीतल का मंडनभूत मगध नामक देश (प्रान्त, वर्तमान समय में बिहार प्रान्त) था। वहाँ शत्रु दलों के बल का दलन करने वाले महाराजा श्रेणिक राज्य करते थे। उसी मगध प्रदेश के अन्तर्गत धन-धान्य से समृद्ध गुव्वर नाम का (नालन्दा के समीप) ग्राम था। उसी ग्राम में सकलगुणनिधान विप्र जातीय वसुभूति नामक पण्डित निवास करते थे। उनकी पत्नी का नाम पृथ्वी था ।।२।।

ताण पुत्त सिरि इन्दभूइ भूवलय पसिद्धउ,
चउदह विज्जा विविह रूव नारी रस लुद्धउ।
विनय विवेक विचार सार गुणगणह मनोहर,
सात हाथ सप्रमाण देह रूवहिं रम्भावर ।।३।।

उनके पुत्र का नाम इन्द्रभूति था, जो विश्वविख्यात था, विविध प्रकार की चौदह विद्या रूपिणी नारियों का रस लोभी था, अर्थात् चतुर्दशविद्यानिधान था और विनय, विवेक, विचारशीलता आदि श्रेष्ठ गुण समूह से शोभायमान था। इनका देहमान सात हाथ का था और रूप-सौन्दर्य रम्भावर अर्थात् इन्द्र के तुल्य था ।।३।।

नयण वयण कर चरण जणवि पंकज जल पाडिय,
तेजहि तारा चंद सूर आकास भमाडिय।
रूवहि मयण अनंग करवि मेल्यउ निरधाडिय,
धीरमइ मेरु गम्भीर सिन्धु चंगम चय चाडिय ।।४।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जिनके नेत्र, मुख, हाथ और पैरों की अरुणिमा से लज्जित होकर कमलों ने जल में निवास कर लिया था, जिनके प्रभापूर्ण तेज से भ्रमित होकर तारागण, चन्द्र और सूर्य आकाश मण्डल में भ्रमण करने लगे थे, जिनके अतुलनीय रूप-सौन्दर्य से पराजित होकर मदन—कामदेव अनंग/शरीरहीन बनकर इन्हीं के शरीर में समाविष्ट हो गया था। धैर्य और गाम्भीर्य में ये क्रमशः मेरु की उत्तुंगता और समुद्र की गहनता से भी अधिक बढ़े-चढ़े थे। अथवा इनकी प्रशस्ततम धीरता और गम्भीरता के समक्ष अपने को न्यून समझकर दोनों ने अपनी चंक्रमण/गतिशीलता का त्याग कर, गहन स्थिरता धारण कर मेरु ने पर्वत का और सागर ने क्षारत्व धारण कर पृथ्वी का आश्रय ले लिया था ॥४॥

पेखवि निरुवम रूव जास जण जम्पइ किंचिय,
एकाकी किल भित्त इत्थ गुण मेल्या संचिय।
अहवा निच्चय पुव्व जम्म जिणवर इण अंचिय,
रम्भा पउमा गउरि गंग रति हा ! विधि वंचिय ॥५॥

इनके अतुलनीय रूप-सौन्दर्य राशि को देखकर जन-समूह विचार करता है, कहता है कि इस युग में असाधारण रूप-धारक ये एकमात्र हैं, अन्य कोई भी दृष्टिपथ में नहीं आता है। और, विश्व में जितने भी अलौकिक गुण हैं उनका संकलन कर विधाता ने इनमें ही स्थापित कर दिये हैं, अर्थात् ये गुणों के भण्डार हैं। अथवा निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि इन्होंने पूर्व जन्म में जिनेश्वर देवों की अर्चना की थी उसी के फलस्वरूप इन्हें निरुपम—उपमा रहित रूप-सौन्दर्य और गुणराशि प्राप्त

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

हुई है। इसी कारण कह सकते है कि हा, ! विधाता ने भी रम्भा, पद्मा, गौरी, गंगा और रति के रूप-सौन्दर्य की रचना करते समय उनमें क्रमशः मादकता, ऐश्वर्य, सतीत्व, पवित्रता और रमणीयता आदि केवल एक-एक गुण का सन्निवेश कर उनको छला है। अर्थात् देवांगनाओं को रूपराशि और गुण भी उनके समक्ष तुच्छ हैं ।।५।।

न य बुध न य गुरु कविण कोय जसु आगल रहियउ,
पंच सयां गुण पात्र छात्र होंडइ परिवरियउ।
करिय निरंतर यज्ञ करम मिथ्यामति मोहिय,
अविचल होस्यइ चरम नाण दंसणह विसोहिय ।।६।।

इन्द्रभूति सोचते थे कि विश्व में मेरे वैदुष्य एवं प्रतिभा के समक्ष न तो काई विद्वान् है और न कोई मेरा गुरु-स्थानीय हो सकता है तथा न काई कविपुंगव है कि जिनका सामीप्य मैं स्वीकार कर सकूं, अर्थात् वे स्वयं को सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र एवं मनीषी मूर्धन्य समझते थे। गुण सम्पन्न ५०० सुयोग्य छात्रों को शिक्षा प्रदान करते हुए उनके साथ परिभ्रमण करते थे। मिथ्यावासित मति/बुद्धि होने के कारण ये निरन्तर यज्ञ-कर्म करते रहते थे, अर्थात् कर्मकाण्डी विद्वान् थे। कवि कहता है— यही इन्द्रभूति चरम तीर्थंकर महावीर का सामीप्य प्राप्त कर, दर्शन-विशुद्धि पूर्वक चरम-नाण/केवल ज्ञान प्राप्त कर अविचल मोक्ष पद को प्राप्त करने वाले हैं ।।६।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(जम्बूद्दीव) जम्बूद्दीव भरहवासम्मि,
खोणीतलइ मंडण,
मगह देस सेणिय नरेसर,
वर गुव्वर गाम तिहं
विप्प वसइ वसुभूइ सुन्दर ।
तसु पुहवी भज्जा सयल, गुणगण रूवनिहाण ।
ताण पुत्त विज्जानिलउ, गोयम अतिहि सुजाण ।।७।।

पूर्वोक्त छः पद्यों के निष्कर्षों का वस्तु नाम छन्द में प्रतिपादन करते हुए कवि कहता है :—

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में पृथ्वीतल का मण्डनभूत मगध देश था । वहाँ का नृपति श्रेणिक था । उसी प्रदेश में श्रेष्ठ गुव्वर नामक ग्राम था । उस ग्राम में वसुभूति नामक श्रेष्ठ विप्र रहता था । उसकी पत्नी का नाम पृथ्वी था । उन्हीं का पुत्र गोतम था जो समस्त गुणों का भण्डार, रूप का निधान विद्या का मन्दिर और अत्यन्त सुज्ञ था ।

यह चारुसेना नामक रड्डा-वस्तु छन्द है । इस मात्रिक छन्द में नौ चरण होते हैं । प्रथम के पाँच चरणों में क्रमशः १५, ११, १५, ११, १५ मात्राएँ होती हैं और अन्त के चार चरण दोहा छन्द के होते हैं ।।७।।

सर्वज्ञ बनने के पश्चात् भगवान् महावीर तीर्थ अर्थात् संघ की स्थापना हेतु पावापुरी पधारे, उस समय उनके अतिशयों का वर्णन करते हुए पद्यांक ८ से १५ तक में कवि कहता है :—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चरम जिणेसर केवलनाणी,
चउविह संघ पइट्ठा जाणी ।
पावापुरी सामी संपत्तउ,
चउविह देव-निकायहिं जुत्तउ ।।८।।

इस अवसर्पिणी काल के चरम/अन्तिम जिनेश्वर श्रमण भगवान् महावीर केवलज्ञानी बनने के बाद अपने तीर्थ/चतुर्विध संघ की प्रतिष्ठा/स्थापना करने हेतु चारों प्रकार के देव-निकायों (भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों) से परिवृत होकर पावापुरी नगरी पधारे ।।८।।

पद्यांक ८ से १५ तक में १६ सोलह मात्रा का पादाकुलक (चौपाई) नामक छन्द है । यह छन्द भी चतुष्पदी है, चार चरणों वाला है । प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ हैं

देवहि समवसरण तिहं कीजइ,
जिण दीठइ मिथ्यामति छीजइ ।
त्रिभुवन गुरु सिंहासण बइठा,
ततखिण मोह दिगंत पइट्ठा ।।९।।

उस समय वहाँ पर देवों ने समवसरण की रचना की । इसके दर्शनमात्र से मिथ्यामत का अन्धकार नष्ट हो जाता है । समवसरण के मध्य में स्थापित सिंहासन पर त्रिभुवन के गुरु/स्वामी विराजमान हुए । उस समय मोहादि अन्तरंग शत्रु तत्क्षण ही दशों दिशाओं में पलायन कर गये, भाग खड़े हुए ।।९।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रोध मान माया मद पूरा,
जायइ नाठा जिम दिन चोरा ।
देवदुंदुभि अकासइ वाजी,
धरम नरेसर आव्यउ गाजी ।।१०।।

जिस प्रकार दिन में चोर भाग खड़े होते हैं वैसे ही क्रोध, मान, माया, और मद भी परिवार सहित अति दूर खिसक गये । आकाश में देव-दुन्दुभियाँ बजने लगीं और "धर्म नरेन्द्र" आ गया है घोष से नभो-मण्डल गूंज उठा ।।१०।।

कुसुम वृष्टि विरचइ तिहं देवा,
चउसठ इन्द्रज मांगइ सेवा ।
चामर छत्र सिरोवरि सोहइ,
रूवहि जिणवर जग सहु मोहइ ।।११।।

वहाँ समवसरण में देवों ने सुगन्धित फूलों की वर्षा की । चौसठ इन्द्र प्रभु से चरण-सेवा की याचना/चाहना करने लगे । प्रभु के दोनों ओर देवगण चामर ढुलाने लगे और शिर पर छत्र शोभित होने लगा । प्रभु के स्वरूप अतिशय से समग्र विश्व मोहित हो रहा था ।।११।।

उवसम रस भर वर वरसंता,
जोजन वाणी वखाण करंता ।
जाणवि वद्धमाण जिण पाया,
सुर नर किन्नर आवइ राया ।।१२।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उस समय समवसरण के मध्य सिंहासन पर विराजमान प्रभु वर्धमान स्वामी योजन पर्यन्त प्रसृत होने वाली वाणी से उपशम रस से सराबोर अमृतमयी मधुर देशना देने लगे। जब लोगों ने यह जाना कि वर्धमान स्वामी पधारे हैं और देशना दे रहे हैं तब देववृन्द, मनुष्यवृन्द, किन्नरगण और भूपतिगण प्रभु के दर्शन करने और देशना सुनने के लिये आने लगे, उमड़ पड़े ।।१२।।

कांति समूहइ झलहलकंता,
गयण विमाणहिं रणरणकंता।
पेखवि इन्दभूइ मन चिंतइ,
सुर आवइ अम यज्ञ हुवंतइ ।।१३।।

नभोमण्डल में कान्ति समूह से देदीप्यमान/जाज्वल्यमान एवं घण्टियों के रण-रणक ध्वनि से गुंजार करते हुए विमानों के आगमन को देखकर इन्द्रभूति स्वयं के मन में ऊहापोह करने लगे कि 'यज्ञ के प्रभाव से ही प्रेरित होकर ये देव-विमान हमारे यज्ञवाटक—यज्ञशाला में आ रहे हैं' ।।१३।।

तीर तरण्डक जिम ते वहता,
समवसरण पहुता गहगहता।
तउ अभिमानइ गोयम जंपइ,
इणि अवसरि कोपे तणु कंपइ ।।१४।।

किन्तु, जिस प्रकार धनुष से छोड़ा हुआ तीर सीधा निशाने की ओर जाता है उसी प्रकार ये देवविमान यज्ञशाला को लाँघकर, देवगण गद्‌गद्‌भावों से भक्ति/उल्लास पूर्वक समवसरण में पहुँच गये। इस दृश्य को देखकर क्रोधाधिक्य

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

के कारण इन्द्रभूति का शरीर कम्पायमान हो गया और अभिमान के आवेश में आकर वे इस प्रकार बोलने लगे :—।।१४।।

मूढा लोक अजाण्युं बोलइ,
सुर जाणंता इम कंइ डोलइ।
मूं आगल कउ जाण भणिज्जइ,
मेरु अवइ किम उपमा दिज्जइ ।।१५।।

मूर्ख मानव तो अज्ञान के कारण वृथा वचन बोल जाते हैं, किन्तु देवगण तो विज्ञ कहलाते हैं, फिर ये क्यों भटक रहे हैं ? अर्थात् यज्ञशाला को छोड़कर आगे क्यों भागे जा रहे हैं ? क्या इस ब्रह्माण्ड में मुझ से अधिक कोई विज्ञ/मनीषी है ? क्या मेरु की तुलना सामान्य पदार्थ—राई-सरसों से की जा सकती है ? ।।१५।।

(वीर जिणवर) वीर जिणवर नाण संपन्न,
पावापुरि सुरमहिय,
पत्त नाह संसार—तारण,
तंहि देवहि निम्मविय,
समवसरण बहु सुक्खकारण।
जिणवर जगि उज्जोयकर, तेजहि कर दिनकार।
सिंहासण सामि ठव्यउ, हुअउ सुजय जयकार ।।१६।।

पद्यांक ८ से १५ तक का सारांश प्रस्तुत करते हुए कवि कहता है :—सर्वज्ञ बनकर देवेन्द्रों से पूजित जिनेन्द्र वीर प्रभु पावापुरी पधारे। संसारतारक स्वामी को प्राप्त कर और अत्यधिक सुख का कारण मानकर देवों ने वहाँ—पावापुरी में समवसरण की रचना की।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जिस प्रकार सूर्य अपनी तेजस्वी किरणों से जगत को आलोकित करता है उसी प्रकार विश्व को उद्योतित करने वाले जिनेश्वर महावीर स्वामी उस समवसरण में देव-निर्मित सिंहासन पर विराजमान हुए, उस समय देवों ने जय-जयकार किया ।।१६।।

पद्यांक ७ के समान यहाँ भी चारुसेना रड्डा नामक वस्तु छन्द है ।

पद्यांक १७ से २१ तक आगे के ५ पद्यों में कवि वर्णन करता है कि किस प्रकार इन्द्रभूति दर्प में आकर भगवान् से शास्त्रार्थ करने जाता है । प्रभु का अतिशय देखकर एवं मन में स्थित शंकाओं का समाधान प्राप्त कर विभु का शिष्यत्व स्वीकार करता है और स्वामी अपने तीर्थ की स्थापना करते हैं ।। १६ ।।

तउ चढियउ घण माण गजे, इंदभूइ भूदेव तउ,
हुंकारउ करी संचरिय, कवणसु जिणवर देव तउ ।
जोजन भूमी समवसरण पेखवि प्रथमारंभ तउ,
दह दिसि देखइ विबुध वधू, आवंती सुररंभ तउ ।।१७।।

ब्राह्मण देवता इन्द्रभूति तब अत्यन्त अभिमान रूपी हाथी पर चढ़कर जोश से हुंकार करते, गरजते हुए "कौनसा जिनेश्वर देव है" देखने/पराजित करने हेतु शिष्य-समुदाय से परिवृत होकर चले । ज्यों ही वे आगे बढ़े तो सर्वप्रथम उन्होंने एक योजन भूमि में देव-निर्मित समवसरण देखा और देखा कि दसों दिशाओं से देव और देवांगनाएँ प्रवर्धमान भावों से समवसरण में पहुँच रहे हैं ।।१७।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पद्यांक १७ से २१ तक के पाँचों पद्य चार चरणात्मक २७ मात्रा वाले मात्रिक छन्द हैं। १४, १३ पर यति है। छन्द का नाम शोध की अपेक्षा रखता है।

मणिमय तोरण दण्ड-ध्वज, कोसीसइ नव घाटतउ,
वैर-विवर्जित जंतु गण प्रातिहारज आठ तउ।
सुर नर किन्नर असुर वर, इन्द्र इन्द्राणी राय तउ,
चित्त चमक्किय चिंतवइ ए, सेवंता प्रभु पाय तउ ॥१८॥

इन्द्रभूति देखते हैं: –समवसरण का तोरण द्वार मणि-रत्नों से निर्मित है। इन्द्र ध्वज लहरा रहा है। समवसरण के कपिशीर्षक (कांगुरे) चतुर शिल्पियों द्वारा निर्मित एवं रत्न खचित हैं। पशु एवं पक्षियों के समूह स्वकीय जातिगत वैर को छोड़कर सौहार्द भाव से मिलकर बैठे हुए हैं। आठों प्रातिहार्यों/अतिशयात्मक वस्तुओं—अशोक वृक्ष, पुष्पवृष्टि, दिव्य ध्वनि, चामर युगल, सिंहासन, भामण्डल, देव-दुन्दुभि, छत्र—से वे प्रभु सुशोभित हैं। सुर, असुर, किन्नर, मानव, इन्द्र-इन्द्राणियाँ, राजागण प्रभु के चरण-कमलों की उपासना/सेवाभक्ति कर रहे हैं। उक्त दृश्यों को देखकर इन्द्रभूति का मानस चमत्कृत/झंकृत हो जाता है ॥१८॥

सहस-किरण-सम वीर जिण, पेखिअ रूव विसालतउ,
एह असंभव संभवे ए, सांचउ ए इन्द्रजाल तउ।
तउ बोलावइ त्रिजग-गुरु, इंदभूइ नामेण तउ,
सिरिमुख संसय सामि सवे, फेडइ वेद पएण तउ ॥१९॥

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

हजार किरणों वाले सूर्य के समान वीर विभु के देदीप्यमान एवं विशाल रूप-राशि को देखकर इन्द्रभूति विचार करते हैं कि, जो असम्भव है, कल्पनातीत है, अवर्णनीय है वह भी प्रत्यक्ष में दृष्टिगत हो रहा है। अतः यह निश्चित है कि यह असाधारण व्यक्तित्वधारी प्रभु न होकर कोई ऐन्द्रजालिक है और अपनी इन्द्रजाल विद्या से सब को सम्मोहित कर, मूर्ख बना रहा है।

जिस समय इन्द्रभूति का मानस उद्भ्रान्त सा होकर सोच-विचार में तल्लीन था उसी समय तीनों लोकों के गुरु/स्वामी ने अपनी अमृत सम गिरा में कहा:—"भो इन्द्रभूति ! आओ"। तदनन्तर वीर विभु ने इन्द्रभूति के हृदय में शल्यवत् जो संदेह था कि "जीव है या नहीं" प्रमाण भूत वेद की ऋचाओं को उद्धृत कर उस संशय-शल्य को जड़मूल से उखाड़ फैंका, अर्थात् संशय का निराकरण कर दिया ॥१९॥

मान मेलि मद ठेलि करि, भगतिहिं नम्यउ सीस तउ,
पंचसयासुं व्रत लियो ए, गोयम पहिलउ सीस तउ।
बंधव संजम सुणिवि करि, अगनिभूइ आवेय तउ,
नाम लइ आभास करइ, ते पण प्रतिबोधेय तउ ॥२०॥

सन्देह छिन्न होने पर, मन में संकल्पित प्रतिज्ञा के अनुसार कि—"यदि यह वस्तुतः सर्वज्ञ है और मेरी मनस्थित शंका का स्वतः ही समाधान कर देता है, तो मैं इसका शिष्यत्व स्वीकार कर लूंगा"—तत्क्षण ही इन्द्रभूति ने अहंकार का परित्याग कर, मद को तिलांजलि देकर, भक्ति-श्रद्धा पूर्वक सिर झुकाकर महावीर को सादर नमन किया और अपने

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पांच सौ शिष्य/छात्र वृन्द के साथ प्रभु का शिष्यत्व अंगीकार किया। भगवान् महावीर ने सपरिवार इन्द्रभूति को प्रव्रजित कर अपना प्रथम शिष्य घोषित किया।

अपने अग्रज भ्राता इन्द्रभूति के संयम ग्रहण और सर्वज्ञ के शिष्य बनने के संवाद जब अग्निभूति मनीषी को ज्ञात हुए तो अग्निभूति भी सर्वज्ञ को शास्त्रार्थ में पराजित कर अपने बड़े भाई को उस (ऐन्द्रजालिक) के जाल से मुक्त कराने के अभिप्राय से अपने ५०० छात्रों के साथ समवसरण की ओर चला। सर्वज्ञ महावीर ने इन्द्रभूति के समान ही "भो अग्निभूति! आओ" सम्बोधित कर, उसके हृदि स्थित कर्मविषयक शंका का समाधान कर प्रतिबोधित किया। प्रतिबोध प्राप्त कर अग्निभूति ने भी ५०० छात्रों के साथ संयम ग्रहण कर प्रभु का शिष्यत्व अंगीकार कर लिया ।।२०।।

इणि अनुक्रम गणहर रयण, थाप्या वीर इग्यार तउ,
तउ उपदेसइ भुवन गुरु, संयम सुं व्रत धारतउ।
बिहुं उपवासइ पारणुँ ए, आपणपइ विहरंत तउ,
गोयम संयम जगि सयल, जय जयकार करंत तउ ।।२१।।

पावापुरी यज्ञशाला में देश के विख्यात याज्ञिक विद्वान् सम्मिलित हुए थे। उक्त सभी याज्ञिक इन्द्रभूति और अग्निभूति की तरह सर्वज्ञ को पराजित कर अपना शिष्य बनाने की कामना से क्रमशः—वायुभूति, आर्य व्यक्त, सुधर्म, मण्डित, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचलभ्राता, मेतार्य, प्रभास—समवसरण में गये और अपनी-अपनी शंकाओं का महावीर के श्रीमुख से वेद ऋचाओं के माध्यम से समाधान पाकर, स्वकीय विपुल शिष्य परिवारों

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

के साथ ही उन्होंने सर्वज्ञ का शिष्यत्व अंगीकार कर लिया, अर्थात् प्रभु महावीर के ही बन गये। प्रभु ने अनुक्रम से ११ याज्ञिकों को संयम व्रत प्रदान कर, अपना शिष्य बनाकर सभी को गणधर पद पर स्थापित किया और अपने शासन/संघ की स्थापना की।

दीक्षानन्तर इन्द्रभूति ने यावज्जीवन दो-दो उपवास के अन्त में पारणक करने की प्रतिज्ञा ग्रहण की। इस प्रकार उत्कट तपस्या और उत्कृष्टतम संयम का पालन करते हुए अप्रमत्त दशा में भूमण्डल पर विचरण करने लगे। इनके प्रशस्ततम गुणों को देखकर सारा जगत् इन्द्रभूति/गौतम गणधर की जय-जयकार करने लगा ।।२१।।

(इंदभूइ) इन्दभूइ चढियो बहुमान,
हुंकारउ करि संचरिउ,
समवसरण पहुतउ तुरंतु,
जइ–जइ संसय सामी,
सवि चरमनाह फेडइ फुरंतु।
बोधिबीज संजाय मनइं, गोयल भवह विरत्तु।
दिक्खा लइ सिक्खा सहिय, गणहर पय संपत्तु ।।२२।।

इस पद्य में पद्यांक १७ से २१ तक का सारांश वर्णित है। इन्द्रभूति अत्यन्त दर्प में आकर हुंकारता/गर्जता हुआ चला और तत्क्षण ही प्रभु के समवसरण में पहुँच गया। उसके मन में जो-जो भी संशय थे, उनका चरम तीर्थपति सर्वज्ञ महावीर ने निराकरण कर दिया। फलतः इन्द्रभूति के अन्तस्तल में बोधिबीज/सम्यक्त्व का आविर्भाव हुआ और उसने/गौतम ने

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भव से विरक्त होकर स्वामी से दीक्षा ग्रहण कर, शिक्षा प्राप्त कर गणधर पद प्राप्त किया ।।२२।।

इसमें कवि ने भद्रा नामक रड्डा—वस्तु छन्द का प्रयोग किया है। यह नौ चरणों का है। प्रारम्भ के पाँच चरणों में १५, १२, १५, १२, १५ मात्राएँ हैं और अन्त के चार चरण दोहा छन्द में निबद्ध हैं।

पद्यांक २३ से ३० तक ८ पद्यो में कवि ने गणधर गौतम की गुरु-भक्ति, जनहित महावीर स्वामी से प्रश्न, "चरम शरीरी हूँ या नहीं" के समाधान हेतु अष्टापद तीर्थ की यात्रा, १५०० तापसों को प्रतिबोध आदि का सारगर्भित वर्णन किया है।

आज हुअउ सुविहाण, आज पचेलिमां पुण्य भरउ,
दोठउ गोयम सामि, जउ निय नयणइं अमिय झरउ।
समवसरणहि मझार, जइ–जइ संसा उपजइ ए,
तइ–तइ पर उपगार, कारण पूछइ मुनिपवरउ ।।२३।।

उनके लिये वह आज का दिन स्वर्णिम दिवस है, भाग्योदय का दिवस है, उनके लिये आज परिपक्व पुण्य का उदय हुआ है कि जिन्होंने अमृतस्रावी अश्रुसिक्त स्वकीय नेत्रों से गौतम स्वामी को देखा, उनके प्रत्यक्ष दर्शन किये, उनके स्वरूप को अपने नेत्रों में अंकित कर लिया।

मुनिप्रवर गणधर गोतम जनहित के लिये जो भी चित्त में शंकाएँ/संशय उत्पन्न होते थे उनके निराकरण के लिये समवसरण में विराजमान सर्वज्ञ प्रभु से प्रश्न पूछ कर विभु से समाधान प्राप्त करते थे ।।२३।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

२३ से ३० तक के पद्य २५ मात्रा के देश्य छन्द हैं, यति ११, १४ पर है।

जिहं जिहं दीजइ दिक्ख, तिहं तिहं केवल उपजइ ए,
आप कनइ अणहुंत, गोयम दीजइं दान इम।
गुरु ऊपरि गुरु–भत्ति, सामी गोयम ऊपनिय,
इणि छल केवल नाण, रागज राखइ रंग भरइ ॥२४॥

गौतम स्वामी जहाँ-जहाँ जिस-जिस को भी प्रव्रज्या/दीक्षा प्रदान करते थे, वहाँ-वहाँ वे सभी कैवल्य लक्ष्मी/केवल-ज्ञान का वरण कर लेते थे। वे स्वयं केवलज्ञान से रहित थे, पर स्वहस्तदीक्षित शिष्यों को सर्वोच्च केवलज्ञान को दान रूप में वितरित करते ही थे।

अपने गुरु/प्रभु महावीर के प्रति अटूट राग/प्रेम के ही कारण योग्य होते हुए भी वे कैवल्य से वंचित थे। यदि वे राग-भंग कर दें तो उन्हें उसी क्षण कैवल्य प्राप्त हो सकता था। अर्थात् अटूट प्रेम और केवलज्ञान के मध्य दाव-पेंच चल रहा था। परन्तु, गौतम स्वामी की मान्यता थी कि, मेरा प्रभु के प्रति जो अतुलनीय प्रेम है वह अक्षुण्ण बना रहे, गुरु-राग-रहित कैवल्य लक्ष्मी को मुझे चाहना/आवश्यकता नहीं है। ॥२४॥

जउ अष्टापद सेल, वंदइ चढी चउवीस जिण,
आतम–लब्धिवसेण, चरम सरीरी सो य मुणि।
इय देसणा निसुणेह, गोयम गणहर संचरिय,
तापस पनर–सएण, तउ मुणि दीठउ आवतु ए ॥२५॥

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गणधर गौतम की जिज्ञासा थी कि—"मैं चरम शरीरी हूँ या नहीं" अर्थात् इसी मानव शरीर से, इसी भव में मैं निर्वाण पद प्राप्त करूंगा या नहीं ?

महावीर ने उत्तर दिया—आत्मलब्धि–स्ववीर्यबल से अष्टापद पर्वत पर जाकर भरत चक्रवर्ती निर्मित चैत्य में विराजमान चौवीस तीर्थंकरों की वन्दना जो मुनि करता है, वह चरम शरीरी है ।

प्रभु की उक्त देशना सुनकर गौतम स्वामी अष्टापद तीर्थ की यात्रा करने के लिये चल पड़े ।

उस समय अष्टापद पर्वत पर आरोहण करने हेतु पहली, दूसरी और तीसरी सीढ़ियों पर क्रमशः पाँच सौ-पाँच सौ कुल पन्द्रह सौ तपस्वीगण अपनी-अपनी तपस्या के बल पर चढ़े हुए थे । उन्होंने गौतम स्वामी को आते देखा । ।।२५।।

तप सोसिय निय अंग, अम्हां सगति न उपजइ ए,
किम चढसइ दिढकाय, गज जिम दीसइ गाजतउ ए ।
गिरुअउ इणे अभिमान, तापस जो मन चिंतवइ ए,
तउ मुनि चढियउ वेग, आलंबवि दिनकर किरण ए ।।२६।।

गौतम स्वामी को अष्टापद पर्वत पर चढ़ने के लिए प्रयत्नशील देखकर वे तापस मन में विचार करने लगे—यह अत्यन्त बलवान मानव जो मदमस्त हस्ति के समान झूमता हुआ आ रहा है, यह पर्वत पर कैसे चढ़ सकेगा ? असम्भव है । लगता है कि उसको अपने बल पर सीमा से अधिक अभिमान है । अरे ! हमने तो उग्रतर तपस्या करते हुए स्वयं के शरीरों को शोषित कर, अस्थि-पंजर मात्र बना रखा है,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तथापि हम लोग तपस्या के बल पर क्रमशः एक, दो, तीन सीढ़ियों तक ही चढ़ पाये, आगे नहीं बढ़ पाये। तापसगण सोचते ही रहे और उनके देखते ही देखते गौतम स्वामी सूर्य की किरणों के समान आत्मिक बलवीर्य का आलम्बन लेकर तत्क्षण ही आठों सीढ़ियां पार कर तीर्थ पर पहुँच गये ।।२६।।

कंचन मणि निप्फन्न, दण्ड-कलस ध्वज वड सहिय,
पेखवि परमाणंद, जिणहर भरहेसर महिय।
निय निय काय प्रमाण, चिहु दिसि संठिय जिणह बिम्ब,
पणमवि मन उल्लास, गोयम गणहर तिहां वसिय ।।२७।।

अष्टापद पर्वत पर चक्रवर्ती भरत महाराज द्वारा महित/पूजित जिन-मन्दिर मणिरत्नों से निर्मित था, दण्ड-कलश युक्त था, विशाल ध्वजा से शोभायमान था। मन्दिर के भीतर प्रत्येक तीर्थंकर की देहमान के अनुसार २४ जिनेन्द्रों की रत्न मूर्तियाँ चारों दिशाओं में ४,८,१०,२ विराजमान थीं। मन्दिरस्थ जिन मूर्तियों के दर्शन कर गौतम स्वामी का हृदय उल्लास से सराबोर हो गया, हृदय परम आनन्द से खिल उठा। भक्ति-पूर्वक स्तवना का। सांयकाल हो जाने के कारण मन्दिर के बाहर शिला पर ही ध्यानावस्था में रात्रि व्यतीत की ।।२७।।

वयरसामि नउ जीव, तिर्यग् जृम्भक देव तिहां,
प्रतिबोध्या पुंडरिक, कंडरीक अध्ययन भणो।
वलता गोयम सामि, सवि तापस प्रतिबोध करइ,
लेइ आपणि साथ, चालई जिम जूथाधिपति ।।२८।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उसी रात्रि में वज्र स्वामी का जीव जो उस समय तिर्यग् जृम्भक देव था, वह ध्यानावस्थित गौतम स्वामी के निकट आया और स्वामी ने पुण्डरीक-कण्डरीक की कथा के माध्यम से उसे प्रतिबोधित किया। प्रातःकाल होने पर वापस लौटते हुए गौतम स्वामी ने तपस्यारत समस्त पन्द्रह सौ तापसों को प्रतिबोध दिया। सभी तपस्वियों ने सहर्ष उनका शिष्यत्व अंगीकार कर लिया। जिस प्रकार हाथी अपने झुण्ड के साथ चलता है, वैसे ही यूथाधिपति के समान गौतम स्वामी पन्द्रह सौ शिष्यों के परिवार के साथ समवसरण की ओर चले ॥२८॥

खीर खाण्ड घृत आणि, अमिय वूठि अंगूठ ठवई,
गोयम एकण पात्र, करावइ पारणउ सवई।
पंच सयां सुभ भाव, उज्जल भरियउ खीर मिसइ,
साचा गुरु संयोग, कवल ते केवल रूप हुआ ॥२९॥

ये समस्त तपस्वी तापस निरन्तर एक, दो, तीन उपवास की तपस्या में रत थे। संयोग से जिस दिन उन्होंने शिष्यत्व अंगीकार किया, वह सभी के पारणक का दिन था। सभी को गौतम स्वामी जैसा सद्गुरु प्राप्त कर परमानन्द हुआ था। अतः गौतम स्वामी भी पारणक के दिवस मधुकरी/गोचरी में अपने पात्र में दूध, खाण्ड, घृत मिश्रित खीर/परमान्न लेकर आये। सभी तपस्वियों को पंगत में बिठाया। उस पात्र में स्वयं का अमृतस्रावि अंगुष्ठ रख कर सभी को पारणा करवाया। एक ही छोटे से पात्र में रही खीर द्वारा सभी को सन्तुष्टि हुई। उनके इस अतिशय/लब्धि का एवं सद्गुरु की महत्ता का शुभ चिन्तन करते हुए खीर खाते-खाते पाँच सौ

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तपस्वियों को केवल ज्ञान प्राप्त हो गया था। सच है कि वास्तविक सद्गुरु का संयोग/सान्निध्य मिलने पर कवल/ग्रास भी केवलज्ञान के रूप में परिणत हो जाता है ।।२९।।

पंच सयां जिण नाह, समवसरण प्राकार त्रयइ,
पेखवि केवल नाण, उप्पन्नो उज्जोय करइ।
जाणइ जणवि पीयुष, गाजंतउ घन मेघ जिम,
जिन–वाणी निसुणेवि, नाणी हूआ पंच सयां ।।३०।।

पाँच सौ तपस्वियों ने जिनेन्द्र भगवान् के तीन परकोटे वाले अद्भुत एवं अनिर्वचनीय समवसरण को देखकर, शुभ-भाव पूर्वक विचार सरणि में चढ़ते हुए जगदुद्योतकारी/लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त किया। और, पाँच सौ ने वर्षाकालीन सघन मेघों की गर्जना के समान जिनेन्द्र महावीर विभु की दिव्य-वाणी को सुनकर, विशुद्ध चिन्तन पूर्वक गुण-स्थानों पर आरोहण करते हुए केवलज्ञान प्राप्त किया ।।३०।।

(इणि अनुक्रमइ) इणि अनुक्रमइ नाण–सम्पन्न,
पनरह सय परिवरिय,
हरिय दुरिय जिणनाह वंदइ,
जाणवि जगगुरु वयण,
तिहं नाण अप्पाण निंदइ।
चरम जिणेसर इम भणइ, गोयम म करिस खेउ।
छेहि जाइ आपणि सही, होस्यां तुल्ला बेउ ।।३१।।

केवलज्ञान सम्पन्न पन्द्रह सौ केवलियों से परिवृत होकर, गौतम स्वामी समवसरण में पहुँच कर हितकारी प्रभु को

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

शीघ्रता से वन्दन करने लगे और पन्द्रह सौ केवली केवल-ज्ञानियों की परिषद् की ओर जाने लगे। उनको केवलि-परिषद् में जाते देखकर गौतम स्वामी ने टोका। उस समय जगद्गुरु महावीर ने कहा—गौतम ! केवलियों की आशातना मत करो।

"आज के दीक्षित भी केवली बन गए और मैं अभी तक केवल्य-लाभ से वंचित रहा" इस विचार सरणि से वे व्यथित हो गए और स्वयं को आत्म-निन्दा करने लगे। गौतम को उद्विग्न देखकर अन्तिम तीर्थपति महावीर ने पुनः कहा—हे गौतम ! खेद मत करो। अन्त में मैं और तुम अर्थात् दोनों एक समान हो जायेंगे, एक ही स्वरूप को प्राप्त कर लेंगे अर्थात् मुक्ति में दोनों समान हो जायेंगे ।।३१।।

पद्यांक ७ और १६ की तरह यहाँ भी चारुसेना नामक रड्डा छन्द है।

कार्तिकी अमावस्या के दिन पावापुरी में प्रभु का निर्वाण हुआ। देवमुख से संवाद सुनते ही गौतम को अत्यन्त मानसिक मार्मिक विषाद हुआ। वे विलाप करने लगे। विचार शृंखला बदलने पर उन्हें कैवल्य की प्राप्ति हुई। कवि उक्त वर्णन का पद्यांक ३२ से ३६ तक में मार्मिक पद्धति से प्रस्तुत कर रहा है :—

सामियो ए वीर जिणिंद, पूनम चन्द जिम उल्लसिय,
विहरियो ए भरह वासम्मि, वरस बहुत्तर संवसिय।
ठवतो ए कणय–पउमेण, पाय–कमल संघे सहिय,
आवियो ए नयणानन्द, नयर पावापुरि सुरमहिय ।।३२।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रभु महावीर की उक्त वाणी "अन्त में हम दोनों समान होंगे" सुनकर गौतम स्वामी का मानसिक खेद दूर हुआ और उनका मुख-कमल पूर्णिमा के चन्द्र के समान खिल उठा।

अथवा श्रमण भगवान् महावीर जो भव्यजनों के मानस को पूर्ण चन्द्र के समान विकसित करने वाले हैं, जिन्होंने अपनी आयु के ७२ वर्ष भरत क्षेत्र में व्यतीत किये हैं, जो देवेन्द्रों से पूजित/अर्चित हैं, जो नयनों को आनन्द देने वाले हैं, वे स्वर्ण-कमलों पर अपने चरण-कमलों को रखकर विचरण करते हुए (अपना सान्ध्य काल निकट जानकर) पावापुरी नगरी में पधारे ।।३२।।

३२ से ३६ तक के पद्य २८ मात्रा के उल्लाला छन्द के हैं, १४–१४ पर यति है।

पेखियउ ए गोयम सामि, देवसमा पडिबोह करइ,
आपणु ए तिसला देवी, नन्दन पहुतउ परम पए।
वलतउ ए देव आकास, पेखवि जाणिउ जिण समि ए,
तउ मुनि ए मन विखवाद, नाद भेद जिम उप्पनउ ए ।।३३।।

निर्वाण रात्रि के पूर्व दिवस ही प्रभु ने गौतम का राग-बन्ध-विच्छेद करने हेतु उनको देवशर्मा को प्रतिबोध देने के लिये निकटस्थ ग्राम में जाने का निर्देश दिया। गौतम स्वामी वहाँ गये और देवशर्मा को प्रतिबोध देकर वह रात्रि वहीं धर्म-जागरण में व्यतीत की। और, इधर इसी रात्रि में त्रिशलादेवी के नन्दन और हमारे आराध्य देव भगवान् महावीर ने जन्म-जरा-मरण के बन्धनों से सर्वदा के लिये मुक्त होकर परमोच्च सिद्ध पद को प्राप्त किया।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इधर प्रातःकाल होने पर गौतम स्वामी प्रभु के समीप पहुँचने के लिये चल पड़े। मार्ग-चलते हुए उन्होंने देखा—आकाश मण्डल में विमानों में बैठकर देवगण त्वरा के साथ पावापुरी की ओर भागते हुए निर्विण्ण शब्दों में कहते जा रहे हैं:—"चलो, शीघ्रता से चलो, भगवान का निर्वाण महोत्सव मनाने जल्दी चलो।"

"महावीर का निर्वाण" शब्द-ध्वनि कानों में पड़ते ही सहसा उन्हें इन शब्दों पर विश्वास ही नहीं हुआ। "देव असत्य नहीं बोलते" स्मरण में आते ही गौतम हतचेता/दिङ्मूढ हो गए। विषाद की सहस्रों धाराओं से उनका गात्र कम्पित होकर शिथिल हो गया। असह्य मार्मिक व्यथा से चित्त उद्वेलित होकर संकल्प-विकल्प में गोते खाने लगा। वे विलाप करते हुए, उपालम्भ देते हुए कहने लगे ॥३३॥

इणि समे ए सामिय देखि, आप कनासुं टालियउ ए,
जाणतउ ए तिहुअण नाह, लोक विवहार न पालियउ ए।
अतिभलु ए कीधलुं सामि, जाण्युं केवल मांगसे ए,
चिन्तव्यु ए बालक जेम, अहवा केड़इ लागसे ए ॥३४॥

प्रभु ने अपना अन्तिम/निर्वाण समय जानकर भी इस समय अपने पास से मुझे प्रतिबोध देने के छल से दूर भेज दिया, स्वामी आपने यह अच्छा नहीं किया।

अन्तिम समय में लोग अपने व्यक्तियों को जो दूर हैं उन्हें भी अपने समीप बुला लेते हैं, यह लोक-व्यवहार है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

परन्तु, हे त्रिभुवन नाथ ! आपने जानते हुए भी लोक-व्यवहार जैसी सामान्य मर्यादा का पालन भी नहीं किया !

हे स्वामिन् ! आपने समझा होगा कि विदाई के समय मैं आपसे केवलज्ञान की याचना करूंगा, अतः मुझे दूर भेजकर आपने बहुत ही शोभनीय कार्य किया है ?

आपने सोचा होगा—मुक्तिवधू से मिलन के समय यह गौतम बालक की तरह पिण्डली/पैर पकड़ कर बाधक बन जायेगा, अतः दूर कर दिया ! प्रभु आपने बहुत अच्छा कार्य किया ! ।।३४।।

हुं किम ए वीर जिणिंद, भगतिहि भोले भोलव्यु ए,
आपणु ए अविहड नेह, नाह न संपइ साचव्यु ए ।
साचउ ए ए वीतराग, नेह न हेजइं लालियुँ ए,
तिणि समि ए गोयम चित्त, र ग-विरागइ वालियुँ ए ।।३५।

हे मेरे जिनेन्द्र महावीर ! मैं तो भोला/सरल स्वभावी/। भद्र होने के कारण आपके चरणों की सेवावश पागल बन गया था । मेरा तो आपके प्रति अविहड/निश्छल स्नेह था । क्या आपने उसे बनावटी प्रेम मानकर ही सम्प्रति मुझे दूर खिसका दिया था !

उपालम्भ देते-देते यकायक हा उनको विचार-धारा ने पलटा खाया । उनके चिन्तन की दिशा बदली । राग का स्थान विराग ने ले लिया । अन्तर्मुखी होकर सोचने लगे—अरे गौतम ! तुम ज्ञानी होकर भी बालक की तरह क्या सोचने लगे ! अरे ! तुम प्रभु को ही उपालम्भ देने लगे ! अरे !

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तुम्हारा वैदुष्य कहाँ चला गया ! क्या तुम नहीं जानते कि प्रभु महावीर तो सच्चे वीतरागी थे । यदि सर्वज्ञ किसी के प्रति स्नेह करे तो वह वीतराग कैसे कहला सकता है ? यही कारण है कि उन्होंने राग को अपने पास फटकने ही नहीं दिया था । ।।३५।।

आवतउ ए जे उल्लट, रहितउ रागइ साहियउ ए,
केवल ए नाण उप्पन्न, गोयम सहिज उमाहियउ ए ।
तिहुअण ए जय-जयकार, केवल महिमा सुर करइ ए,
गणधरु ए करय वक्खाण, भवियण भव जिम निस्तरइ ए
।।३६।।

गौतम स्वामी का विचार-मंथन गुणस्थानों की ओर उन्मुख हुआ । वे मोह भंग होते ही राग-रहित होकर क्षपक श्रेणि पर आरूढ हो गए । तत्क्षण ही उन्हें सहजता से केवल-ज्ञान प्राप्त हो गया । महावीर के निर्वाण से जो अन्धकार छा गया था वह गौतम स्वामी के केवली हो जाने से दूर हो गया, छिटक गया । तीनों लोक के प्राणी उनकी जय-जयकार करने लगे । देवतागण केवलज्ञान की महिमा/उत्सव करने लगे । गौतम गणधर ने केवलज्ञानी बन कर उस प्रकार की देशना देने लगे जिससे कि भविक जन उसे श्रवण कर एवं पालन कर संसार समुद्र से पार उतर जाएँ ।।३६।।

(पढम गणहर) पढम गणहर वरस पच्चास,
गिहवासे संवसिय,
तीस वरस संजम विभूसिय,
सिरि केवलनाण पुण,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

बार वरस तिहुअण नमंसिय ।
राजगिहि नयरो ठव्यउ, बाणवइ वरिसाऊ ।
सामी गोयम गुणनिलउ, होसइ सिवपुर ठाऊ ।।३७।।

कवि इस पद्य में गौतम स्वामी की पूर्णायु का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए कहता है :—

प्रभु महावीर के प्रथम गणधर गौतम गौत्रीय इन्द्रभूति ५० वर्ष तक गृह-जीवन/गृहस्थावस्था में रहे। ३० वर्ष तक संयम की साधना में रत रहे। १२ वर्ष तक विश्ववन्द्य बनकर केवलज्ञानी की अवस्था में विचरण करते रहे। इस प्रकार ५० + ३० + १२ = ९२ वर्ष की आयु पूर्ण कर राजगृह नगरी में रहते हुए मुक्ति नगरी पधार गए, जाएंगे ।।३७।।

चारुसेना नामक रड्डा—वस्तु छन्द है।

भारतीय समाज में जो स्थान अनिष्टहारी मंगलकारी हितकारी के रूप में गणपति/गणेश जी का है, वही स्थान जैन परम्परा में गौतम स्वामी का है। वे अनन्तलब्धि सम्पन्न, विघ्नोच्छेदक एवं कल्याणकारी के रूप में माने जाते हैं। प्रातः काल में इनके पवित्र नाम का स्मरण अत्यन्त सिद्धिदायक माना गया है। इसीलिये कवि पद्यांक ३८ से ४७ तक में उनकी अतिशय महिमा का वर्णन करते हुए कहता है :—

जिम सहकारइ कोयल टहुकइ,
जिम कुसुमवनइ परिमल महकइ,
जिम चन्दन सोगन्ध निधि ।
जिम गंगाजल लहर्यां लहकइ,
जिम कणयाचल तेजइ झलकइ,
तिम गोयम सोभाग निधि ।।३८।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जैसे आम्रवृक्ष कोयल की कूहू-कूहू से शब्दायित है, जैसे पुष्पोद्यान परिमल की महक से महकित/सुरभित है, जैसे चन्दन सुगन्ध का भण्डार है, जैसे गंगा जल लहरों से तरंगित है, जैसे स्वर्ण पर्वत तेज से देदीप्यमान है, वैसे ही गौतम सौभाग्य के निधान स्थान हैं ।।३८।।

जिम मानसरोवर निवसइ हंसा,
जिम सुर–तरुवर कणय वतंसा,
जिम महुयर राजीव वनइं,
जिम रयणायर रयणइं विलसइ,
जिम अम्बर तारागण विकसइं,
तिम गोयम गुण केलि वनइं ।।३९।।

जैसे मानसरोवर में हंस निवास करते हैं, जैसे देव वृक्ष मन्दार/पारिजात पीत पुष्पों से रमणीय हैं, जैसे कमल वन भ्रमरों से आसेवित हैं, जैसे रत्नाकर/समुद्र रत्नों से दीपित हैं, जैसे आकाश मण्डल तारागणों से मण्डित है, शोभायमान है वैसे ही गौतम स्वामी गुणों के क्रीड़ा स्थान हैं ।।३९।।

पूनम निसि जिम ससियर सोहइ,
सुर–तरु महिमा जिम जग मोहइ,
पूरब दिसि जिम सहसकरु ।
पंचानन जिम गिरिवर राजइ,
नरवइ घर जिम मयगल गाजइ,
तिम जिनशासन मुणिपवरु ।।४०।।

जैसे पूर्णिमा की रात्रि चन्द्रमा से शोभायमान है, जैसे कल्पवृक्ष की महिमा से सारा विश्व लुब्ध है, जैसे पूर्व दिशा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्य से प्रकाशमान है, जैसे सिंहों से पर्वत अलंकृत हैं, जैसे मदमस्त हाथियों से राजाओं के महल गर्जित हैं वैसे ही जिनेन्द्र भगवान का शासन मुनिप्रवर गौतम स्वामी से आलोकित है ।।४०।।

जिम सुर–तरुवर सोहइ साखा,
जिम उत्तम मुख मधुरी भाषा,
जिम वन केतकि महमहे ए ।
जिम भूमिपती भुयबल चमकइ,
जिम जिन मन्दिर घण्टा रणकइ,
गोयम लब्धि गहगह्याउ ए ।।४१।।

जैसे देवताओं का श्रेष्ठ कल्पवृक्ष शाखा-प्रशाखाओं से शोभा देता है, जैसे उत्तम पुरुषों का मुख मधुर भाषा से दीपित होता है, जैसे वनोद्यान केतकी पुष्पों से महकता है, जैसे भूमि-पति/राजा स्वकीय भुजबल से चमकता है, जैसे जिनेश्वर देव का मन्दिर घण्टों की रण-रण ध्वनि से गुंजित होता है वैसे ही गौतम स्वामी आत्मिक-लब्धियों/अतिशयों से आलोकित हैं ।।४१।।

चिन्तामणि कर चढीयउ आज,
सुरतरु सारइ वंछिय काज,
कामकुम्भ सहु वशि हुअए ।
कामगवी पूरइ मन–कामी,
अष्ट महासिद्धि आवइ धामि,
सामि गोयम अणुसरउ ए ।।४२।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जिसने भी अनन्तलब्धिधारक गणधर गौतम स्वामी के दर्शन कर लिये, उनके निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण कर लिया, निरन्तर प्रतिक्षण उनका स्मरण करता रहा उसके लिये मानो चिन्तामणि रत्न हस्तगत हो गया, कल्पवृक्ष ने समग्र मनो-वांछाओं को पूर्ण कर दिया, कामघट अधीनस्थ हो गया, अष्ट महासिद्धियों ने उसके घर में निवास कर लिया ।।४२।।

पणवक्खर पहिलउ पभणिज्जइ,
माया बीजउ श्रवण सुणिज्जइ,
श्रीमति सोभा संभवइ ए ।
देवह धुरि अरिहंत नमिज्जइ,
विणयपहु उवज्झाय थुणिज्जइ,
इण मन्त्रइ गोयम नमउ ए ।।४३।।

इस पद्य में गौतम स्वामी के नामगर्भित मन्त्र का अनुष्ठान करने का प्रतिपादन करते हुए कवि अपना नाम भी निर्दिष्ट कर रहा है :—

प्रणवाक्षर "ओम्" कहलाता है; मायाबीजाक्षर "ह्रीँ" माना जाता है, लक्ष्मी का बीजाक्षर "श्रीँ" है; देवाधिदेव अर्हन्तों का वाचक बीजाक्षर "अर्हं" है । इन चार बीजाक्षरों के बाद गौतम स्वामी का नाम और अन्त में "नमः" का योजन करो । इस रास के प्रणेता **उपाध्याय** पदधारक **विनयप्रभ** कहते हैं कि—हे भव्यजनो ! आप लोग—"ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हं श्री गौतमस्वामिने नमः"—नामक बीजाक्षर गर्भित मन्त्र का अनुष्ठान किया करो ।।४३।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पर-घर वसतां कांइ करिज्जइ,
देस-देसन्तर कांइ भमिज्जइ,
कवण काजि आयास करउ।
प्रह उठी गोयम समरिज्जइ,
काज समग्गल ततखिण सिज्जइ,
नव निधि विलसइ तिहं घरि ए ।।४४।।

हे उपासको ! आप पर-घर में निवास कर अर्थात् दूसरे की नौकरी कर क्या प्राप्त करोगे ? अर्थार्जन हेतु देश-विदेश क्यों भ्रमण करते हो ? कार्यसिद्धि के लिये क्यों प्रयास करते हो ? हे आराधको ! आप तो उषाकाल में उठकर गौतम स्वामो का स्मरण करो, जिससे आपके समस्त कार्य-कलाप तत्काल ही सिद्ध होंगे और नवों निधान आपके घर में विलास/वास करेंगे ।।४४।।

अन्तिम के तीन पद्यों में कवि रचना संवत् का निर्देश कर, नाम का माहात्म्य बतलाते हुए इस रास का उपसंहार करते हुए कहता है:—

चउदह-सय बारोत्तर वरसइ,
गोयम गणहर केवल दिवसइ,
कियो कवित उपगार-परउ।
आदिहिं मंगल ए पभणीजइ,
परव महोच्छव पहिलउ दीजइ,
रिद्धि वृद्धि कल्लाण करउ ।।४५।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चौदह सौ, बारह है उत्तर में जिसके अर्थात् विक्रम संवत् १४१२ में गौतम गणधर के केवलज्ञान-प्राप्ति दिवस पर अर्थात् कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा के दिन परोपकारार्थ कवित्वमय इस **"गोयम रासु"** संज्ञक की रचना पूर्ण की।

गौतम स्वामी का नाम ही प्रथम मंगल के रूप में कहा गया है, पर्वों के महोत्सवों आदि में भी सर्वप्रथम गौतम स्वामी का ही नाम लिया जाता है, स्मरण किया जाता है। हे श्रद्धालुओ ! गौतम गणधर का नाम ही आपके लिये ऋद्धि-कारक, वृद्धिकारक और कल्याणकारी सिद्ध हो ।।४५।।

धन माता जिण उयरइ धरियउ,
धन्य पिता जिण कुल अवतरियउ,
धन्य सुगुरु जिण दिक्खियउ ए।
विनयवंत विद्या भण्डार,
तसु गुण पुहवि न लब्भइ पार,
बड जिम साखा विस्तरु ए।
गोयम सामिनउ रासु भणिजइ,
चउव्विह संघ रलियायत कीजइ,
रिद्धि वृद्धि कल्लाण करु ए ।।४६।।

उस माता को धन्य है जिसने ऐसे विशिष्टतम महापुरुष को उदर में धारण किया। उस पिता को भी धन्य है जिनके कुल में ऐसा नर-रत्न अवतरित हुआ। उस सद्गुरु को भी धन्य है जिसने ऐसे मूर्धन्य मनीषि को दीक्षित किया।

गौतम गणधर विनयवान और विद्या के भण्डार थे। उनके अनन्त गुणगणों का विशाल धरा भी छोर नहीं पा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सकती। जैसे वट-वृक्ष की शाखा प्रशाखाओं के विस्तार का पार पाना कठिन है।

हे भव्यो ! गौतम स्वामी का रास पढ़ें। इसके पठन से चतुर्विध संघ में अपार आनन्द होगा। संघ के लिये ऋद्धि-वृद्धि और कल्याणकारी सिद्ध होगा ।।४६।।

कुंकुम चन्दन छड़ो दिवरावउ,
माणिक मोतिनउ चउक पुरावउ,
रयण सिंहासणि बेसणु ए।
तिहं बइसि गुरु देसना दइसी,
भविक जीवना काज सरेसी,
नित नित मंगल उदय करउ ।।४७।।

हे श्राद्धजनो ! गौतम स्वामी के केवलज्ञान दिवस पर आप धर्मस्थल (उपाश्रय) में कुंकुम-चन्दन के हथ-छापे लगाओ, माणिक्य और मातियों के चाके/स्वस्तिक बनाओ और रत्नों का सिंहासन स्थापित करो। उस सिंहासन पर विराजमान होकर सद्गुरु देशना देंगे। वह देशना भव्यजनों के मनाभिलषित कार्य सिद्ध करेगी और वह निरन्तर मंगलकारी तथा अभ्युदयकारी सिद्ध होगी ।।४७।।

पद्यांक ३८ से ४७ तक के पद्य देश्य छन्द के हैं, नाम शोध्य है। ४५ मात्रात्मक द्विपदी मानें तो इसका विराम १६, १६, १३ मात्राओं का है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सहायक पुस्तकें

नाम	लेखक/सम्पादक
अन्तकृद्दशांग सूत्र	
आवश्यक चूर्णि	जिनदासगणि महत्तर
आवश्यक सूत्र टीका	मलयगिरि
इन्द्रभूति गौतम : एक अनुशीलन	गणेश मुनि
उत्तराध्ययन सूत्र	
उपदेशपद स्वोपज्ञ टीका सहित	हरिभद्रसूरि
उपासकदशांग सूत्र	
औपपातिक सूत्र	
कल्पसूत्र टीका कल्पद्रुम कलिका	लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय
खरतरगच्छ का इतिहास	म० विनयसागर
खरतरगच्छ पट्टावली	क्षमाकल्याणोपाध्याय
खरतरगच्छ वृहद गुर्वावलि	सं. मुनि जिनविजय
गणधरवाद	दलसुख मालवणिया
गुरु गौतम स्वामी	रतिलाल दीपचन्द देशाई
गौतम कुलक	
गौतम पृच्छा	
गौतमीय महाकाव्य सटीक	रामविजय, क्षमाकल्याण
चउप्पन्न महापुरुष चरियं	शीलांकाचार्य
चन्द्रप्रज्ञप्ति	
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति	
जैन तीर्थ सर्व संग्रह भाग 1 खण्ड 1–2, भाग 2	आनन्द जी कल्याण जी पेढी

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जैन धातु प्रतिमा लेख भाग–1	मुनि कान्तिसागर
जैन धातु प्रतिमा संग्रह भाग 1–2	बुद्धिसागरसूरि
जैन लेख संग्रह भाग 1–2–3	पूर्ण चन्द्र नाहर
ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र	
त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र	हेमचन्द्राचार्य
नरवर्म चरित्र	विनयप्रभोपाध्याय
2500 वां गणधर गौतम निर्वाण महोत्सव स्मारिका सन् 1986 पावापुरी	
प्रज्ञापना सूत्र	
प्रतिष्ठा लेख संग्रह भाग 1–2	म. विनयसागर
प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग 2	मुनि जिन विजय
बीकानेर जैन लेख संग्रह	अगरचन्द, भंवरलाल नाहटा
भगवती सूत्र सटीक	टी. अभयदेवसूरि
महावीर चरियं	देवभद्राचार्य (गुणचन्द्र गणि)
यतीन्द्र विहार दिग्दर्शन भाग 1–4	विजय यतीन्द्रसूरि
राजप्रश्नीय सूत्र	
विज्ञप्ति लेख संग्रह भाग 1	सं. मुनि जिनविजय
विपाक सूत्र	
विशेषावश्यक भाष्य	जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण
वृत्तमौक्तिक	म. विनयसागर
शत्रुंजय गिरिराज दर्शन	पं. कंचनसागर
श्री भीलड़िया पार्श्वनाथ तीर्थ	विशालविजय
सूत्र कृतांग सूत्र	
सूर्य प्रज्ञप्ति	
स्वाध्याय पुस्तिका सं 1430 की लिखित	

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

महोपाध्याय विनयसागर

जन्म—वि०सं० १९८५

शिक्षा—साहित्य महोपाध्याय, साहित्याचार्य, जैन दर्शन शास्त्री, साहित्य रत्न (सं.) आदि

सम्मानित उपाधियाँ—महोपाध्याय, शास्त्र-विशारद, विद्वद्रत्न आदि।

म० विनयसागर प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, गुजराती, राजस्थानी भाषाओं के विद्वान तथा पुरालिपियों के विशेषज्ञ तो हैं ही, उनके पास जैन दर्शन एवं परम्परा का चहुँमुखी अध्ययन और अनुभव भी है। एक लम्बे समय से जैन दर्शन, प्राकृत भाषा, पुरातत्त्व आदि अनेक विषयों में शोधरत होने के साथ-साथ आपका लेखन नियमितरूप से चल रहा है। प्रस्तुत पुस्तक आपके द्वारा लिखित/सम्पादित/अनुवादित पुस्तकों की शृंखला में तैतीसवीं है तथा अन्य दस पुस्तकें प्रकाशन के लिये लगभग तैयार हैं। आपकी पुस्तकों में से "वृत्तमौक्तिकम्" तथा "नेमिदूतम्" क्रमशः जोधपुर तथा राजस्थान विश्वविद्यालय के एम. ए. संस्कृत के पाठ्यक्रम में रही हैं। शिक्षा विभाग, राजस्थान सरकार ने सन् १९८६ में आपको सम्मानित भी किया है। सम्प्रति प्राकृत भारती अकादमी के निदेशक एवं संयुक्त सचिव हैं।

Jain Educationa International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर

श्री जैन श्वे. नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ, मेवा नगर

सुरेशकुमार जैन, जमशेदपुर

Jain Education International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org